अथ विधवाविवाहमीमांसा

प्रस्तावः ।

सर्वविचारशील महाशयोंको विदित किया जाता है. समय की महिमा भी बड़ी ही विलक्षण है। जिन बातोंका किसीको स्वप्नमें भी अनुमान नहीं होता वे अनहोनी हालतें भी मनुष्योंके सामने आया ही करती हैं। जैसे मरोंका विवाह हो सकना कोई भी नहीं मानता वैसे ही जीवितों का श्राद्ध होना भी असम्भव माना जाता था परन्तु थोड़ेकाल से कुछ नवीन मत चलाने वाले लोग जीवितोंका भी श्राद्ध कहने मानने लगे हैं। अभीतक मरोंको तिलाञ्जलि दी जाती थी, मृतकोंका ही अन्त्येष्टि कृत्य हुआ करता था। अब आगे कदाचित् जीवितोंको भी तिलाञ्जलि देने लगेगें जीवितोंकी भी अन्त्येष्टि कर डालेंगे क्योंकि तिलाञ्जलि अन्त्येष्टिका साथी ही एक प्रकारका श्राद्धकर्म है इसीके अनुसार विधवाका विवाह कहना मानना भी अनहोनी बात है॥

अभीतक सभी समझदार लोग यह जानते और मानते हैं कि मुण्डन, उपनयन, विवाह इत्यादि खास २ कर्मोंके नामधेय हैं। अर्थात् एक खास २ प्रकारसे भिन्न २ मन्त्रादिकी प्रक्रिया सहित विधान किये शास्त्रोक्त रीतिके उन २ कामों के मुण्डनादि नाम हैं। यदि केवल शब्दार्थ किया जाय तो शिर मुंडा देना मुण्डन, किसी को समीप में बुला लेना उपनयन, तथा किसी बालकादिको प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लेना वा हाथ पकड़ लेना विवाह कहा जा सकता है। परन्तु इन मुण्डनादि शब्दोंका ऐसा अर्थ करलेनेसे किसीका काम नहीं चलता इसी कारण इन शब्दोंका वही पारिभाषिक अर्थ सब लोग मानते हैं, केवल शब्दार्थ कोई नहीं मानता। इसीके अनुसार विवाहभी एक खास प्रकारके गृह्यसूत्रोक्त कर्मका नाम है। इस विवाह विषयमें मनुजी आदि महर्षियोंका सिद्धान्त है कि-

पाणिग्रहणिकामन्त्राः कन्यास्वेवप्रतिष्ठिताः ।
नाकन्यासुक्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रियाहिताः ॥
अ० ८ । २२६ ॥

अर्थ—विवाह सम्बन्धी सभी मन्त्र कन्याओंके लिये हैं किन्तु जो कन्या नहीं रहीं जिनका विवाह एकवार हो गया उनके लिये वे विवाह सम्बन्धी मन्त्र नहीं हैं, अर्थात् उन कन्याओंका वेदमन्त्रोंसे फिर विवाह नहीं हो सकता। यद्यपि (मनु० अ० ८। २२५ अकन्येतितुयःकन्यां० श्लोकमें) अक्षतयोनि का नाम कन्या माना है और क्षतयोनि होनेका प्रचार विवाहपूर्वक ही आमतौरसे है तथापि विवाहका कृत्य सप्तपदी पर्यन्त हो जाने पर मानस और वाचिक तथा पाणिग्रहण रूप पुरुषके साथ शारीरिक मेल हो जानेसे विवाह के बाद क्षतयोनि न होने पर भी उस विवाहितामें पूर्ववत् कन्यापन नहीं रहता। इसीलिये नवदुर्गादिके समय जहां कन्याओंके पूजनका विचार होता है वहां पुरुष सम्बन्धसे रहित आठ नव दश ग्यारह वर्षकी होने पर भी विवाहिता लड़की कन्याओंमें नहीं गिनी जाती है। इसीलिये अमरकोष कां० २ व० ६ में (कन्याकुमारी) कुमारी तथा कन्याको एकार्थ माना है। और पाराशर स्मृतिनें जो यह लिखा है कि

दशवर्षाभवेत्कन्या तत ऊर्ध्वंरजस्वला। पराशर अ०७।

अर्थ—दशवर्षकी लड़की कन्या कहाती है दशवर्षके बाद रजस्वला होती है। इस कथनसे कोई लोग कन्या शब्द को वयोवचन मानते हैं और यह मतलब निकालना चाहते हैं कि जब दश वर्षकी अवस्थाका नाम कन्या हुआ तो आठ नौ वर्षकी अवस्थामें विवाह हो जाने पर भी वह दशवें वर्षमें कन्या ही मानी जावेगी, ऐसी दशामें विवाह न होनेपर भी दशसे ऊपर ग्यारह बारह आदि वर्षकी लड़कीको कन्या नहीं माना जा सकता। सो यह विचार उन लोगोंका ठीक नहीं है क्योंकि कन्या शब्द वयोवचन भी माना जाय पर वयोवचन मान लेनेसे कुमारीका नाम जो कन्या है वह खण्डित नहीं हो सकता क्योंकि—

प्राप्तेतुद्वादशेवर्षे यःकन्यांनप्रयच्छति ।
मासिमासिरजस्तस्याः पिबन्तिपितरः स्वयम् ॥

त्रयस्तेनरकंयान्तिदृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥

पराशर अ० ७

अर्थ—बारहवें वर्षमें भी जो कन्याका विवाह नहीं करते वे पिता माता और ज्येष्ठ भाई तीनों नरक दुःखके भागी होते हैं। यदि कन्या शब्द दश वर्षकी आयुमें नियत होता तो बारहवें वर्षकी लड़कीको रजस्वला कन्या कहना नहीं बनता। अर्थात् रजस्वलाके साथ कन्या कहनेसे ही सिद्ध है कि जबतक कुमारी है तबतक वह कन्या है। इससे यह सिद्ध हुआ कि दश वर्षकी अवस्थामें अविवाहिता लड़कीकी विशेषकर कन्या संज्ञा होती है, और इसीसे कन्या शब्द वयोवचन भी रहेगा परन्तु यह अन्य संज्ञाओंका बाधक नहीं है। इसकारण जन्मसेही लेकर विवाहसे पहिले २ जब लड़कीकी जो २ अन्य गौरी आदि संज्ञा होंगी उन सबके साथ कन्या और कुमारी संज्ञा का समावेश रहेगा यहां भीतरी गूढ़ अभिप्राय सब धर्म शास्त्रकारादिका यही जान पड़ता है कि जैसे पुरुषकी १५ वर्ष तक बाल्यावस्था का सामान्य नियम है वैसे स्त्री का १० दश वर्ष तक बाल्यावस्थाका नियम है उसके बाद युवावस्था का आरम्भ है इससे दश वर्ष तक लड़कीका कन्यापन मुख्य है और दशके बाद विवाह होने तक कन्यापन गौण है। सनातन धर्मके सिद्धान्तानुसार ग्यारहवें अथवा बारहवें वर्ष में विशेष कर लड़कीका विवाह होना चाहिये सो प्रायः समझदार लोग ऐसा ही करते भी हैं। इसी कारण वे सभी लड़कियां प्रायः दश वर्ष तक कुमारी कन्या और अक्षत योनि ही रहा करती हैं। यदि कोई पुरुष ८।९ वर्षकी वा इस से भी पहिले लड़कीका विवाह कर दे तो भी दश वर्षतक कामांश नहीं जागता इससे औपचारिक गौण कन्यापन मान लेने पर भी एक वार वेद मन्त्रोंके द्वारा विवाह हो जानेसे मन्त्रोंने जिस कन्यापनको हटा दिया है वह उसमें फिर नहीं

आसकता इसी कारण ८ । ९ आदि वर्षों में भी वेद मन्त्रोंसे हुआ विवाह फिर नहीं लौटा जा सकता इससे उसका फिर विवाह नहीं हो सकता ॥

हिन्दु धर्मकी अदालतोंमें वेदके द्वारा हुआ काम हाई-कोर्टका फैसला है कि जिसकी अपील किसी अन्य जगह नहीं सुनीजाती क्योंकि उससे ऊपरी अदालत और कोई नहींचाहें यों कहो कि वेद ही सबका शिरोमणि है इसी कारण वेद मन्त्रों से हुआ विवाह फिर लौटा नहीं जा सकता (सकृत्कन्या-प्रदीयते) इस मनु वचनका भी अभिप्राय यही है कि कन्या-दानादि विवाहकृत्य वेद मन्त्रों द्वारा एक ही वार होता है। जिन शूद्र लोगोंमें विधवा स्त्रीके लिये दूसरे तीसरे पुरुषको पति बना लेनेकी चाल अब तक बनी है वहां भी पहिलेके तुल्य वेदि पर कन्या वरका विवाह विवाहकी पद्धतिसे नहीं होता इसीसे वहां कन्यादान भी नहीं होता और जो कुछ कृत्य देशाचारानुसार किया करते हैं उसका नाम विवाह कोई नहीं कहता किन्तु उसका नाम धरौना आदि कहते हैं इससे विधवा का तो विवाह कदापि हो ही नहीं सकता चाहें यों कहो कि बन्ध्यापुत्रादि शब्दोंके तुल्य अनहोनी बात विधवा विवाह है ॥

यदि कोई महाशय यह कहें कि—

कन्यायाः कनीनच ॥ अ० ४। पा० १ ।सू० ११६ भाष्यम्—कन्याशब्दोऽयं पुंसोऽभिसंबन्ध-पूर्वके संप्रयोगे निवर्त्तते। या चेदानीं प्रागभि-संबन्धात्पुंसा सह संप्रयोगं गच्छति तस्यां क-न्याशब्दो वर्त्तत एव ॥

भावार्थ—यह कन्या शब्द पुरुषके साथ विवाह विधि-वाग्दानादि होने पूर्वक पाणिग्रहण रूप पुरुषके साथ संयोग

नाम मेल होने पर निवृत्त हो जाता है। विवाह शब्दका शब्दार्थ विशेष प्राप्ति वा विशेष मेल है सो मन वाणी शरीर तीनोंसे होने वाला मेल ही विशेष मेल कहाता है। महाभाष्यकार पतञ्जलिमुनिका अभिप्राय यह नहीं है कि विवाहके बाद पुरुषके साथ मैथुन हो जाने पर कन्या शब्द की निवृत्ति हो जाती है किन्तु संप्रयोग शब्दका अर्थ पाणिग्रहण तथा सप्तपदी है क्योंकि कर्ण और व्यास जी की माता जिस समय कन्या थी उसी समय देवता और महर्षि के वरदान रूप संकल्पसे कर्ण तथा व्यास जी इस प्रकार उत्पन्न हुए थे कि जिससे कर्ण और व्यासकी माताओंका कन्यापन नष्ट नहीं हुआ, अर्थात् एवं साधारण मनुष्योंकी उत्पत्तिके तुल्य स्त्री पुरुषके संयोगसे गर्भ नहीं हुआ और वे दोनों उपस्थ मार्गसे पैदा भी नहीं हुए ! इसी कारण वे दोनों अक्षत योनि कुमारी कन्या थीं यह बात महाभारतकी उस २ कथासे स्पष्ट सिद्ध है। और जो विधि के साथ विवाहकी कार्यवाही होनेसे पूर्व पुरुष के साथ दर्शन वरदानादि रूप मेल जिसका हो जाय उसका कन्यापन बना रहता है॥

यदि कोई महाशय महाभाष्यकार का यह अभिप्राय निकालें कि विवाह होनेसे पूर्व पुरुषके साथ संयोग हो जाने पर कन्या बनी रहती है तो (मनु० अ० ८। २२५ अकन्येति तु यः कन्यांब्रूयाद्द्वेषेणमानवः) इस कथनसे विरोध होगा क्योंकि श्लोकमें अविवाहित को विवाहित कहना द्वेषसे नहीं बन सकता। तब उत्तर यह है कि-उक्त श्लोक का ठीक२ अभिप्राय देखिये यथा अक्षतयोनि कुमारी कन्याको जो क्षतयोनि हो गयी कहे इससे सिद्ध हुआ कि विवाहसे पूर्व भी व्यभिचार द्वारा क्षतयोनि होनेपर कन्यापन नहीं रहता किन्तु वह अकन्या होजाती है, इसीलिये तो कुन्ती और सत्यवती दोनोंही कर्ण और व्यासके होजानेपर भी अक्षतयोनि कुमारी कन्या ही बनी थीं, क्योंकि वे कर्ण और व्यास दैवीसिद्धि द्वारा अन्य मार्गसे

कुन्ती सत्यवतीको निमित्तमात्र मानकर उत्पन्न हुये। साधारणोंके तुल्य नौमासतक गर्भमें नहीं रहेथे। जैसे कोई बालक स्त्री पुरुषका संयोग होते ही तत्काल ९। १० महिनेका जैसा नहीं बन सकता और तत्काल ही चलने फिरने भागने भी नहीं लगता परन्तु व्यासजी तत्काल ही पैदा होकर बड़े होके भागने लगे और महर्षि पराशरजीके साथ तपोवनको चले गये थे जैसे यह आश्चर्य हुआ वा अनहोनी सी बात हुई वैसे ही विलक्षण प्रकारसे व्यासका प्रकट होना जानो कि जिससे व्यास की माता कन्या ही बनी रही। यह ऊपर लिखा विचार हमारी कल्पना मात्र नहीं है किन्तु पूर्वज अनेक विद्वानोंकी यही राय है। तथाहि—पूर्वोक्त (कन्यायाः कनीनच अ॰ ४। १। ११६) सूत्रपर कैयटने लिखा है कि—

मुनिदेवतामाहात्म्याद्वा पुंयोगेऽप्यक्षतयोनिर्भवति यथा कुन्तीमन्त्राहूतदिनकरोत्पादितकर्णाख्यपुत्रापि पुनः कन्यैवाभूत्। तदपत्यं कानीनशब्दाभिधेयम्॥

इसका स्पष्टार्थ यही है कि ऋषिमुनि तथा देवताओंके माहात्म्यसे अर्थात् उनके सिद्ध होनेसे दर्शन स्मरणादि पूर्वक संकल्प मात्र स्त्रीके साथ पुंयोग होनेसे कर्णादि उत्पन्न हुये इसी कारण कुन्ती आदि अक्षतयोनि कन्या मानी गयीं, उन्हीं अक्षत योनि कन्याओंके कर्ण व्यासादि सन्तान कानीन कहाये थे। यदि कोई कन्या विवाहसे पहिले किसी पुरुषके साथ व्यभिचार करे और उससे कोई सन्तान पैदा हो तो वह क्षत योनि होने से कन्या नहीं रही इसीसे उसका सन्तान भी कानीन नहीं कहावेगा। इस सबका सारांश यह निकला कि जो अक्षत योनि भी हो और जिसका विवाह न हुआ हो वही कन्याकुमारी मानी जायगी उसीका विवाह वेदमन्त्रोंसे हो सकता है। इस पर यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि—यागर्भिणी संस्क्रियते। मनु॰ अ॰ ९। १७३। पुनः संस्कारमर्हति॥

इत्यादि वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि क्षतयोनि होनेसे ही विवाहसे पहिले गर्भिणी हुई पीछे उसका मन्त्रोंसे विवाह संस्कार मनुजी ने दिखाया कि (या गर्भिणी संस्क्रियते) तब क्षतयोनि अकन्या का भी मन्त्रोंसे विवाह होना सिद्ध हो गया। तथा (साचेदक्षतयोनिःस्यात्०) इत्यादि श्लोक १७६से मनुजी ने अक्षतयोनि विवाहिता स्त्रीका पुनः संस्कार नाम पुनर्विवाह दिखाया है। ऐसी दशामें मनु० अ० ८। २२६ श्लोक से जो यह सिद्ध करते हो कि अक्षत योनि तथा अविवाहित कन्याओंका ही विवाह वेदमन्त्रोंसे हो सकता है सो ठीक नहीं रहा॥

इसका संक्षेपसे समाधान यह है कि (मनु० अ० ८ श्लोक २२६ (पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव०) इत्यादि कथन उत्सर्गरूप सामान्य है तथा मनु० अ० ९। श्लोक १७२। १७६। इत्यादि कथन अपवादरूप विशेष है। तब शास्त्रोंका नियम यह है कि—

(नापवादविषयमुत्सर्गोऽभिनिविशते)

अपवादके विषयमें उत्सर्गकी प्रवृत्ति नहीं होती किन्तु अपवादके अंशको छोड़के शेषांशमें उत्सर्ग प्रवृत्त होता है। इससे सिद्ध हुआ कि विवाहसे पहले गर्भिणी हो जाने पर भी विवाह होना तथा विवाह होजानेपर भी अक्षत योनि स्त्रीका पौनर्भवपतिके साथ पुनर्विवाह होना ये दोनों मनु० अ० ८। २२६ के अपवाद हैं ऐसे अन्य भी कोई अपवाद हों तो उनको छोड़के शेषांशमें उत्सर्ग लगेगा। यही बात मनुके भाष्यकार पं० कुल्लूकभट्टने भी कही है कि—

अतःसामान्यविशेषन्यायादितरविषयोऽयं क्षतयोनिविवाहस्याधर्मत्वोपदेशः॥ म०अ०८।२२६॥

सामान्य विशेष न्यायका ही नाम उत्सर्गापवादकी संगति है। इस अभिप्रायसे सिद्ध हुआ कि अपवादांशको छोड़-

कर यदि कोई क्षतयोनि कन्याका वा विवाहिताका पुनर्विवाह करे तो उसीको अधर्म कहा है। इससे सिद्ध हुआ कि क्षतयोनि अविवाहिताका तथा विवाहिता क्षतयोनि अक्षत योनि दोनों प्रकारकी स्त्री के पुनर्विवाहका आम तौरसे सामान्य कर निषेध है। इस लिये जो लोग आमतौर से विधवा विवाह चलाना चाहते हैं वह धर्म शास्त्रकी आज्ञानुसार अधर्म है। यदि वे लोग अधर्म को ही धर्म मानते हुए विधवाओंका विवाह कराये विना नहीं बच सकते तो भी वेद मन्त्रोंसे विवाह न कराया करें और उसका नाम विधवा विवाह न कहा करें किन्तु शूद्रोंमें जैसे धरौना होता है वैसे करावें और धरौनादि कोई ऐसा ही नाम रख लेवें जिससे शास्त्र मर्यादा को धक्का न लगे। इस सब उक्त कथन का उपसंहारमें सारांश यह निकला कि (या गर्भिणी संस्क्रियते०) तथा (सा चेदक्षतयोनिः स्यात्०) ये वचन विधायक नहीं हैं किन्तु इनका अभिप्राय यही है कि विवाहसे पहिले अपनी कन्या का किसी पुरुषके साथ व्यभिचार होना सभी बुरा समझते हैं इससे राग वश यदि ऐसा अनुचित कहीं हो जाय और गर्भिणीका विवाह भी हो जाय तो वह सन्तान सहोढ कहावेगा अर्थात् दोगला संकरके तुल्य निन्दित होगा। तथा द्वितीय पौनर्भव भी निन्दित होगा। और शास्त्रोक्त ब्राह्मादि विवाहजन्य सन्तान कदापि निन्दित नहीं होते। इससे सिद्ध हुआ कि वेद मन्त्रों द्वारा हुआ विवाह ही मुख्य विवाह है सो वह पुनर्भू आदिको छोड़के सामान्यतया सब विधवाओंका मन्त्रोंसे नहीं हो सकता इससे विधवा विवाह शब्द ही ठीक नहीं है॥

इस पुस्तकमें तीन प्रकरण रक्खे हैं। पहिलेका नाम वेदमन्त्रार्थ प्रकरण, द्वितीय—स्मृतिप्रमाणव्यवस्थाप्रकरण और तृतीय यौक्तिक शङ्का समाधान प्रकरण है। इनमें क्रमशः सब विचार लिखा जायगा।

* इतिशम् *

विधवाविवाहमीमांसा

॥ वेदमन्त्रार्थप्रकरणम् ॥

सर्व साधारण महाशयों को ज्ञात ही है कि विधवा विवाह और नियोग पर हमारे अनेक भ्रातृगण बहुत कालसे विशेष बल दे रहे हैं कि नियोग और विधवा विवाहका द्विजों में भी प्रचार होना चाहिये। इस विषय पर स्मृतियोंमें भी अनेक वचन ऐसे हैं जो साधारण लोगों को वा उन लोगोंको [कि जिन्होंने देश हितकारी होनेकी डुग्गी पीट २ कर पातिव्रतधर्म (जो शुद्ध कुल परम्पराका तथा स्त्री जाति को स्वर्ग प्राप्तिका हेतु था) को वास्तवमें बड़ा धक्का दिया है] नियोग वा विधवा विवाह के साधक प्रतीत होते हैं उन प्रमाणोंको ले २ कर वे लोग बहुतही अब तक उछलते कूदते हैं। पर वे वास्तवमें प्रमाण नहीं किन्तु प्रमाणाभास हैं। उनका समाधान वा व्यवस्था अब तक "विधवोद्वाहशङ्कासमाधि" आदि पुस्तकों द्वारा विद्वान् लोगोंने कर भी दी है और करते भी जाते हैं तथा हम भी इस पुस्तकमें आगे यथोचित पूरी २ व्यवस्था लिखेंगे। पर स्मृतियोंके वचन परतः प्रमाण होने से ऐसे पुष्ट नहीं माने जाते जैसे कि श्रुति नाम वेदके प्रमाण माने जाते हैं। और नियोग पक्षवाले वेद मंत्रों का भी प्रमाण देते ही हैं। इस लिये अनेक धर्मात्मा सज्जनोंके अनुरोधसे हम उन वेद मन्त्रोंका स्पष्ट अक्षरार्थ और आशय यहां लिखना आरम्भ करते हैं कि जो छः वा सात मन्त्र स्वा० द० जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाके नियोग विषय में लिखे हैं। आशा है कि हमारे पाठक महाशय ध्यान दे के पढ़ें देखेंगे और यथोचित लाभ के भागी बनेंगे।

कुहँस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।

**कोवांशयुत्राविधवेवदेवरं मर्यंन-
योषाकृणुतेसधस्थआ ॥ १ ॥**

ऋ० मं० १० सू० ४० । मं० २ ॥

प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरस्याश्विदैवतसूक्तस्य विनियोगः । हे अश्विना—अश्विनौ देवौ कुहस्वित् क्वस्विद् युवां दोषा रात्रौ भवथः कुह वस्तोः दिवा भवथः । कुह क्वाभिपित्वमभिप्राप्तिं करतः कुरुथः । कुह क्व वा ऊषतुः—वसथः । तथा को यजमानो वां युवां सधस्थे सहस्थाने वेद्याख्ये आकृणुते आकुरुते-परिचरणार्थमात्माभिमुखीकरोति । तत्राभिमुखीकरणे दृष्टान्तद्वयमस्ति शयुत्रा शयने विधवेव देवरम् । यथा विधवा वाग्दानानन्तरं मृतभर्तृका कन्या शयने देवरमभिमुखी करोति । मर्यं न योषा यथा सर्वा साधारणा स्त्री मर्यं मनुष्यं स्वपतिमभिमुखी करोति तथा ॥

भा०—यथाप्रेम्णाऽऽनन्दमनुभवितुं स्त्रीस्वपतिमभिमुखीकरोति तथा स्वर्गानन्दानुभवाय यजमानेनाश्विनौदेवौयज्ञादिकर्मसु स्तोतव्यौ परिचरणीयौ प्रेम्णाचोपास्यौ । यस्याम्म्रियेत-कन्याया वाचासत्येकृतेपतिः । तामनेनविधाने-

न नियोविन्देतदेवरः ॥ अनेन स्मृतिवाक्येन वाग्दानानन्तरं कन्यायाः पतिसम्बन्धोदेवरसम्बन्धश्च स्मृतिकारेण स्फुटं प्रदर्शितः । इदं च स्मृतिवचः सार्वदेशिकं सर्वैः सर्वदानुमतं न केनापि स्मृतिवचनेनास्य विरोधः । तस्मादनेन श्लोकेन मनुनोक्तवेदमन्त्रस्याशयः प्रदर्शितः । मनुवाक्यानां सर्वदा सर्वथा वेदानुकूलत्वात् । सप्तपद्यनन्तरं जातायां विधवायां नियोगे मन्वादिस्मृतिवाक्यान्यैकदेशिकानि (नोद्वाहिकेषुमन्त्रेषु नियोगःकीर्त्यतेक्वचित्) इत्यादिप्रमाणैर्व्याहतानि च नापि नियोगःसार्वकालिकः कलिवर्ज्यत्वात् । तस्मान्नायंवेदमन्त्रस्याशयः॥

भावार्थः—अग्निष्टोमादि यज्ञोंके प्रातरनुवाक और आश्विन शस्त्रमें इसमंत्रका विनियोगहै। हे (अश्विना) अश्विनीकुमार देवो ! (कुहस्वित्) तुम दोनों कहां (दोषा) रात्रिमें सोते तथा (कुह वस्तोः) कहां दिनमें सोते हो (कुहाभिपित्वं करतः) और कहां इष्टकी प्राप्ति करते हो (कुह ऊषतुः) कहां वसते हो। तथा (कः) कौन यजमान पुरुष (वाम्) तुम दोनोंको (सधस्थे) यज्ञवेदीरूप एक स्थानमें (आकृणुते) सेवा करनेके लिये सन्मुख करता है अर्थात् कौन तुम्हारी भक्तिमें तत्पर होता है। इसपर मन्त्रमें दो दृष्टान्त हैं (शयुत्रा) शय्यापर (विधवेव देवरम्) जैसे वाग्दानके पश्चात् जिसका पति मर गया है ऐसी विधवा कन्या विवाह द्वारा प्राप्त हुई देवरकी सेवामें तत्पर होती अथवा (मर्यं न योषा) सभी स्त्रियां अपने मनुष्य पतिकी सेवामें तत्पर होतीं और उसको प्रसन्न क-

रती हैं वैसे कौन यजमान यज्ञोंमें तुम दोनों अश्विनीकुमार देवोंको प्रसन्न करनेके लिये तत्पर होता है ॥

भा०—जैसे आनंदका अनुभव करनेके लिये स्त्री अपने पति को प्रेमसे अभिमुख करती है वैसे स्वर्गानंदका अनुभव करनेके लिये यजमानको अश्विनीकुमार देवताओंकी यज्ञादि कर्ममें स्तुति प्रार्थना सेवा भक्ति उपासना प्रेमसे करनी चाहिये। मनुस्मृति अ० ९ में लिखा है कि (यस्याम्रियेत०) जिस कन्या का पति टीका वा लग्न चढ़जाने [वाग्दान होने] पश्चात् मर जावे उसके साथ उस पतिका भाई विधिपूर्वक विवाह कर लेवे। स्मृतिके इस वचनसे कन्याका वाग्दान होनेपर पतिभाव और देवरभाव हो जाता है। यह बात स्मृतिकारने स्पष्ट ही दिखा दी है। और यह स्मृतिका वचन सर्वदेशी है सब धर्मशास्त्रियोंने सब कालमें इसको माना है किसी स्मृति वचन के साथ इसका विरोध नहीं। इस कारण मनुजीने इस श्लोक से पूर्वोक्त वेद मंत्रके (विधवेव देवरम्) दृष्टान्तका आशय दिखा दिया है। क्योंकि मनुजीके वाक्य सब कालमें सब प्रकारसे वेदानुकूल हैं। और सप्तपदीके पश्चात् हुई विधवाका नियोग होनेमें मनु आदि स्मृतियोंके प्रमाण एकदेशी हैं। (नोद्वाहिकेषु मंत्रषु०) विवाहके मंत्रोंमें कहीं नियोग नहीं कहा इत्यादि प्रमाणोंसे खण्डित भी हो जाते हैं। और नियोग सार्वकालिक भी नहीं क्योंकि अधिकारी पूर्ण तपस्वी ऊर्ध्वरेता पुरुष न होनेसे कलियुगमें नियोग वर्जित है,और वेदमें लिखा विचार कभी एकदेशी हो नहीं सकता किन्तु वेदका विचार सदा सर्वदेशी व्यापक ही रहता है इससे सप्तपदीके पश्चात् हुई विधवाके लिये नियोग परक यह मन्त्र नहीं है॥

इस मंत्रका स्वा० द० जी ने बहुत अटपटांग मनमाना अर्थ किया है। (वस्तोः) यह मंत्रस्थ पद निघण्टुमें दिनके नामोंमें पढ़ा है, पर स्वा० द० जी ने ऋ० भूमिकामें इसमें पद

को क्रिया समझ कर (वसथः) वसते हो ऐसा अर्थ लिखा है सो मनमानी कल्पना शास्त्र विरुद्ध है। वस्तोः-का अर्थ यहां सब प्रकार दिन करना ही ठीक है। और (ऊषतुः) क्रियाका अर्थ भी वसते हो ऐसा ही किया है। इस कारण स्वा० द० के लेखमें दूसरा पुनरुक्त दोष भी है। तथा अश्विना पदका अर्थ विवाहित स्त्री पुरुष किया यह भी शास्त्र-प्रमाणों से तथा युक्ति से विरुद्ध मन माना कल्पित अर्थ है। अन्य भी कई अशुद्धि स्वा० द० के अर्थ में निर्विकल्प हैं॥

यह मन्त्र नियोगमें लगाया जाय इसकेलिये नियोग मानने वालोंके निकट कुछ भी सुबूत नहीं है (विधवेव देवरम्) केवल एक ही दृष्टान्त वाक्य ऐसा था जिसमेंसे कुछ खेंच खांच करते सो उसकी शास्त्रानुकूल ठीक सत्य २ संगति हमने लगा दी है। (कुहस्विद्दोषा०) यह मन्त्र निरुक्त अ० ३ खं० १५ में भी आया है। वहां भी नियोग का कुछ नाम निशान नहीं है। हमारी संङ्गति निरुक्तके सर्वथा अनुकूल है। सब से उत्तम कक्षा तो यह है कि कन्या अच्छी धर्मनिष्ठ धर्मतत्त्वको जानने वाली उत्तमकोटि की पतिव्रता हो तो वाग्दान हो जाने पर भी पतिके मरजानेपर अन्य पुरुषके साथ विवाह न करे और आमरणाद् ब्रह्मचारिणी रहकर तप करती हुई शरीर त्यागे तो बड़ा पुण्य अवश्य है। पर ऐसी असंख्य स्त्रियों में कोई कभी हो सकती है। जैसे महाभारतके सावित्र्युपाख्यानमें लिखा है कि जब सत्यवान्के साथ सावित्रीने विवाह करना स्वीकार करलिया तब दैवयोगसे नारदजी आये और सावित्रीके पितासे बातचीत हुई तब नारदजीने कहा कि एक वर्ष के भीतर अमुक दिन सत्यवान् मर जायगा इस लिये आपकी कन्याका विवाह सत्यवान्के साथ नहीं होना चाहिये। ऐसा सुनकर सावित्री के पिता राजाको भी बड़ा खेद हुआ तब कन्याको बुलाकर नारदजी और कन्याके पिता दोनोंने कहा कि बेटी! तू सत्यवान्के साथ विवाह करनेका

विचार छोड़दे वह अमुक दिन मर जायगा । उस कन्या ने शोच कर शिर झुकाके कहा कि हे देवर्षि! भले ही वे आज ही मरजावें पर मैंने उन को मन से पति मान लिया है मानस विवाह हो चुका, अब यदि इस मन को उन से हटा के दूसरे में लगाऊं तो मानस व्यभिचार होने से पतिव्रता धर्म नष्ट हो जायगा, इसलिये जो हो गया सो हो गया। प्रयोजन यह कि सब काम मन वाणी और शरीर इन तीन प्रकार से होते हैं। वाग्दानसे पूर्व मनसे विचार होता है कि अमुक वरके साथ इस कन्याका विवाह होगा। इसी समय कन्या वरका मन भी एक दूसरेसे सम्बन्ध करलेता है इसीका नाम मानस विवाह है जब टीका चढ़ता है तब (पिता तुभ्यं प्रदास्यति) इत्यादि वाक्यों द्वारा कन्या का भाई वा अन्य ब्राह्मण वाणी से प्रतिज्ञा करता है इस लिये वह वाणी का विवाह द्वितीय है और जिस समय (गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं०) इत्यादि मन्त्र पढ़के कन्या का हाथ वर पकड़ता है उस समय शारीर विवाह होता है जब तीनों प्रकार से हो जाय तब सर्वथा पक्का हो जाता है फिर लौटा नहीं जाता। इसीलिये मनुजीने कहा है कि (पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्) इन अंशों पर कुछ विचार आगे लिखेंगे॥

इयं नारीपतिलोकंवृणाना निपद्यतउपत्वामर्त्यप्रेतम् । धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणंचेहधेहि ।२॥ अथर्व कां० १८ । ३ ॥ ३ ॥

अन्वितोर्थः-हे मर्त्य पुरुष! पतिलोकं वृणाना जन्मान्तरेऽत्वामेव पतिमिच्छन्ती पतिव्रता-

नां सतीनां पुराणं सनातनं धर्ममनुपालयन्ती सेवमाना पतिव्रतेयं नारी प्रेतं त्वामुपनिपद्यते मृतदेहसमीपे नितरां गच्छति त्वत्समीपे शेते तस्यै त्वमिहास्मिन् जन्मनि प्रजां पुत्रादिकं द्रविणं च भोजनवस्त्रादिनिर्वाहाय धनं धेहि धारणं कुरु। वर्त्तमानमस्या धनपुत्रादिकं न नश्येदपितु स्थिरं स्यात् ॥

भा०—सूक्ष्मशरीररूपो भूतात्मा जीवात्मा स्थूलदेहान्निर्गतोऽपि स्थूलेन सम्बन्धं न जहाति। यथा कोऽपि स्वगृहान्निर्गतो देशान्तरं प्राप्तोऽपि गृहेण सम्बन्धं ममेदमित्याकारकं न जहाति । यथा श्राद्धादिषु पितरः प्रार्थ्यन्ते तथैवात्रापि बोध्यम् । पुराणः सनातनो धर्मश्च सतीनां पातिव्रतएव नतु नियोगस्तस्यैकदेशिपक्षेऽङ्गीकारेऽप्यापद्धर्मत्वेनाभिगमत्वात्। पत्युर्मरणानन्तरं पतिव्रता स्त्री मृतदेहसमीपेचितामध्ये शेते तदा सा भवानेव जन्मान्तरेऽपिमम पतिर्भूयादिति याचतेऽयञ्चस्त्रियाः पुराणः सनातनो धर्मोऽस्ति यथा सर्वत्रैव धारणं पोषणं च विद्यमानस्य वस्तुनः सम्भवति । एवमत्रापि विद्यमानयोरेव प्रजाद्रविणयोर्धारणं मंत्रे याच्यते। तस्मादत्र नियोगस्य प्रकारान्तरेण वा पत्यन्तरकरणस्य गन्धमात्रमपि नास्ति । स्वा० दया-

नन्देन मिथ्यैवात्र नियोगार्थः कल्पितः स च प्रमाणशून्यः ॥

भावार्थः—पुरुषके मरणानन्तर अन्त्येष्टिके समय दाहकर्त्ता कोई देवरादि पुरुष मृतकसे कहता है कि हे (मर्त्य) मनुष्य (पतिलोकम्) जिस लोक देश वा ग्राम गृहादिमें मर कर पति गया उसी स्थानमें उसी तुम पतिको फिर (वृणाना) चाहती हुई (पुराणम्) एक जन्ममें दूसरा पति करना तो महा नीच काम है किन्तु जन्मान्तरमें भी उसी पहिले जन्म के पति की चाहना करना इसी सनातन पतिव्रत (धर्मम्) धर्मका (अनुपालयन्ती) अनेक जन्मोंमें वार २ सेवन करती हुई पतिव्रता (इयं नारी) यह स्त्री (प्रेतम्) मृत मरे हुए (त्वा) तुम्हारे (उपनिपद्यते) समीप निरन्तर प्राप्त होती है अर्थात् तुम्हारे निकट सोती है (तस्यै) उसके लिये तुम्हारे समयके विद्यमान (प्रजाम्) पुत्रादि और (द्रविणम्) भोजनादि निर्वाहका धन (धेहि) धारण करो अर्थात् इस तुम्हारी पत्नीका वर्त्तमान धन पुत्रादि नष्ट न हो किन्तु स्थिर बनारहे जिससे यह निर्विघ्न जन्मान्तरमें तुम्हारा फिरदर्शनकरे॥

भा०—सूक्ष्म शरीर रूप भूतात्मा वा जीवात्मा स्थूल शरीर से निकल जाने पर भी स्थूल शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं छोड़ देता है। जैसे कोई अपने घरसे निकल कर देशान्तर को गया हुआ भी अपने घरके साथ कि अमुक घर मेरा है ऐसे सम्बन्धको नहीं छोड़ता। और जैसे श्राद्धादिसे मृत पितरोंसे प्रार्थनाकी जाती है वैसे यहां भी शरीरके द्वारा मृत पुरुषसे कहा जाता है। सती स्त्रियोंका पुराना नाम सनातनधर्म भी पतिव्रता होना ही है। किन्तु नियोग पुरानाधर्म नहीं क्योंकि एकदेशी होने से यदि नियोग को स्वीकार भी किया जाय तो भी वह आपत्कालका धर्म माना जायगा। पतिके मर जाने पर पतिव्रता स्त्री मुर्दा श-

रीरके समीप चितामें लेटती है उस समय उसका अभिप्राय यह होता है कि जन्मान्तरमें येही पति मेरे हों स्त्रीका यही सनातन धर्म है। जैसे सर्वत्र ही धारण और पुष्टि विद्यमान वस्तुकी हुआ करती है वैसे ही यहां मन्त्रमें भी पहिले पति के समयसे जो विद्यमान धन पुत्रादि हैं उन्हींकी स्थिति और पुष्टिकी प्रार्थना की गई है किन्तु नये धन पुत्रादिको मांगने का उक्त मन्त्रमें कोई भी शब्द नहीं है इसी कारण नियोग वा अन्य प्रकारसे दूसरा पति करनेका नाम मात्र गन्ध भी इस मन्त्रमें नहीं है। इस कारण स्वा० द० जी ने मिथ्याही इस मन्त्रमें नियोगका अर्थ कल्पना किया है उसमें कोई भी प्रमाण नहीं इस कारण विचार शीलोंको उपेक्षणीय है॥

नियोग तथा विधवाविवाहके आग्रही लोग अन्य मन्त्रादिको तो साधारण समझते हैं पर आगे लिखे तीसरे मन्त्रको सर्वोपरि मुख्य प्रमाण मानते हैं जिसका ठीक २ अक्षरार्थ हम आगे लिखते हैं पाठक ध्यान देके विचारें—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि। हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ। ऋग्वेद मं०१०।१८।८

उदीर्ष्वेति मन्त्रस्य संकुसुक ऋषिः। पितृमेधो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। अन्त्येष्टिकर्मणि विनियोगः। अत्राश्वलायनगृह्यसूत्रं यथा-उत्तरतः पत्नीम्॥१६॥ धनुश्च क्षत्रियाय॥१७॥ तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमिति॥१८॥

कर्त्ता वृषले जपेत् ॥१९॥ आश्वलायनगृह्ये। अ०४ कं०२ सूत्र १६-१९। यदा चितामध्ये प्रेतं ब्राह्मणदेहं धरेयुस्तदानीं तस्योत्तरभागे तत्पत्नीं शाययेत, क्षत्रियः प्रेतश्चेत्तस्योत्तरतो धनुर्दध्यात्। तां पत्नीं पतिस्थानीयः पत्युरभावे पुंसवनादिकर्मकर्त्ता देवरः पत्युर्भ्राताऽन्तेवासी पत्युः शिष्यो वृद्धो दासः शूद्रः सेवको वा चितास्थानादुदीर्ष्वनारीति मन्त्रेणोत्थापयेत्। शूद्रस्य वेदमन्त्रोच्चारणाधिकारो नास्ति तस्माद्दाह-उत्थापयितरि वृषले सति कर्त्ता दाहकर्त्ता ब्राह्मणो मन्त्रं जपेत्। स च कर्त्ता मृतपति शरीरसन्निधौ शयानां पत्नीं वदेत्—

अ०-हे (नारि) मृतस्य पत्नि! (जीवलोकम्) जीवानां पुत्रपौत्रादीनां लोकं निवासस्थानं गृहम् (अभि) अभिलक्ष्य (उदीर्ष्व) अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ (एतं गतासुमुपशेषे) मृतपतिदेहसमीपे शयनं करोषि तस्मात्त्वम् (एहि) आगच्छ। यस्मात्त्वम् (हस्तग्राभस्य) पाणिग्रहणं कृतवतः (दिधिषोः) गर्भस्य निधातुः (तव) त्वदीयमस्य (पत्युः) सम्बन्धादागतम् (इदं जनित्वम्) जायात्वम् (अभि) अभिलक्ष्य (संबभूथ) पतिप्राणवियोगानिश्चयमकार्षीः। अथवा हे नारि! यस्य समीपे त्वं

शयनं करोषि स मृतदेहो नायं तव पतिः किन्त्वेतदधिष्ठाता जीवस्तव पतिरस्ति स यत्र गतवांस्तं जीवलोकं जन्मान्तरीयसजीवशरीरमभिलक्ष्योदीर्ष्वोत्तिष्ठ जन्मान्तरे सएव मे पतिर्भूयादिति प्रार्थय । पाणिग्रहीतुर्धारणपोषणकर्तुरस्य तव पत्युर्यदिदं जायात्वं त्वयि वर्त्तते तदेव जन्मान्तरेऽभिलक्ष्य सम्भवं मन्यस्व ॥

भा०–पुत्रादयश्च ये जीवाः सन्ति ते पत्युरेवांशभूतास्तेषां पालनं पोषणं च विधवया कर्तव्यम् । पुत्रादिपालनमन्यपुरुषानाकाङ्क्षा स्वेन सार्द्धं प्रीतिश्च पत्युरभीष्टं पूर्वतएवासीत्त देव पत्युरिष्टं कर्म कुर्वती तदाज्ञाकारिणी जन्मान्तरेऽपि तमेव पतिं प्राप्य स्त्री सुखमनुभवति । अत्रैकं दिधिषूपदं विहाय नास्त्यन्यत् किमपि पदं येन नियोगविधवाविवाहयोर्लेशोऽपि प्रतीयेत । वेदे रूढार्थो न कस्यापि विदुषोऽभिमतोऽपितु यौगिकार्थः सर्वमीमांसादिशास्त्रकारानुमतस्तस्मिन् क्रियमाणे दिधिषोर्धारकस्य पोषकस्य च हस्तग्राहकस्य तवपत्युरिति योजनायां न कोऽपि सन्देहोऽवशिष्यते । स्वा० दयानन्देनर्गादिभूमिकायां दिधिषुरिति नियुक्तपत्युर्नामेति लिखितं तच्च तत्रभवतः कल्पनामात्रं न तत्र किमपि प्रमाणमस्ति ।

नियोगेन सन्तानोत्पादकस्य पतित्वकथनमपि शास्त्रविरुद्धं युक्तिविरुद्धं चास्ति। जनित्वपदस्य सन्तानमित्यर्थोऽपि व्याकरणादिविरुद्धः। एवमन्यपदानामर्थोऽन्वयश्चमूलविरुद्ध एव कृतो विद्वद्भिर्द्रष्टव्यः। शेषेइति यत् क्रियापदं लटो मध्यमैकवचनस्यास्ति तत्र क्रियाया एव निघातः स्वरः सायणादिभाष्यकारैरपि क्रियार्थ एव कृतः परं स्वा०दयानन्देन शेषे इति सप्तम्येकवचनं सुबन्तमवगतम्, तच्चोदात्तादिस्वरानभिज्ञव्याकरणाद्यनभिज्ञत्वं च स्फुटमेव॥

भाषार्थः-(वदीव्वं) इस मन्त्रके संकुसुक ऋषि पितृमेध देवता, त्रिष्टुप्छन्द और अन्त्येष्टि कर्नमें विनियोग है। अ० ४ कण्डिका २ सूत्र १६-१९ तक आश्वलायन गृह्यसूत्रों में लिखा है कि यदि पुरुष पहिले मर जावे और पत्नी विद्यमान हो तो श्मशान (मरघट) स्थ चिता में बिछाये हुए कुशों पर मुर्दाको लिटाने पश्चात् उससे उत्तरमें जीवित पत्नी को लिटावे। यदि क्षत्रिय पुरुष मरा हो तो उससे उत्तर भागमें पत्नी की जगह धनुष को धरे। पतिके मर जाने पर यदि पत्नी गर्भवती हो तो पुंसवनादि वा जातकर्म संस्कारादि करनेका अधिकारी होने से देवरको सूत्रकारने पतिस्थानीय कहा। है पतिस्थानीय शब्दका यही अभिप्राय आश्वलायन गृह्यसूत्रके भाष्यकार विद्वानोंने लिखा है। इस कारण इस पति स्थानीय पद से भी नियोग वा विधवा विवाहका गन्ध नहीं आ सकता है यह पतिस्थानीय देवर वा शिष्य अथवा बहुत काल सेवा करते २ वृद्ध हुआ दास शूद्र सेवक उस चितामें लेटी

पत्नीको (उदीर्ष्व०) मंत्र पढ़के उठावे। अर्थात् देवर के अभावमें शिष्य और शिष्यके भी अभावमें वृद्ध सेवक शूद्र उठावे । शूद्रको वेदमन्त्रोच्चारणका अधिकार नहीं यह सर्वशास्त्रोंकी सम्मति प्रसिद्ध है इसी लिये गृह्यसूत्रकार महर्षि आश्वलायन जी कहते हैं कि पत्नीको उठाने वाला शूद्र हो तो दाहकर्म करने वाला ब्राह्मण वा क्षत्रिय मन्त्रको पढ़े। और वही दाहकर्त्ता पुरुष वा देवर अथवा शिष्य मरे हुए पतिशरीरके समीप लेटी हुई पत्नीसे कहता है कि हे (नारि) मृतकी पत्नी (जीवलोकम्) जीवित विद्यमान पुत्र पौत्रादिके निवास स्थान घरको (अभि) देखकर (उदीर्ष्व) इस चितास्थानसे उठ। अर्थात् तुम्हारे विना पुत्रादिका पालन पोषण ठीक न होगा तो यह पतिके भी विरुद्ध है (एतं गतासुमुपशेषे) इस मृत पतिके शरीरके समीप तुम लेटी हो वहांसे तुम (एहि) आवो जिससे तुम (हस्तग्राभस्य) विवाहके समय जिसने मन्त्र पढ़के तुम्हारा हाथ पकड़ा था उन (दिधिषोः) गर्भाधान करने वाले (पत्युः) पतिके सम्बन्धसे आये (तव) तुम्हारे (इदम्) इस (जनित्वम्) पत्नीपनको (अभि) देखकर (संबभूथ) पतिके मरजाने का निश्चय तुमने किया है इससे उठो । अथवा प्रकारान्तरसे मन्त्रका अर्थ यह है कि हे नारी ! जिसके समीप तुम लेटी हो वह मृत शरीर तुम्हारा वास्तवमें पति नहीं है किन्तु इस शरीरका अधिष्ठाता जीव तुम्हारा पति है उसने जिस लोक देश नगर ग्रामादिके जिस शरीरमें जन्म लिया है उसी का ध्यान कर जन्मान्तरमें गये उस सजीव शरीरकी ओर दृष्टि रखके उठो और जन्मान्तर में येही मेरे पति स्वामी हों ऐसी प्रार्थना ईश्वरसे करो पाणिग्रहण और धारण पोषण करने वाले इस तुम्हारे पतिका जो यह सन्तानोत्पत्तिका अंश तुम में आया हुआ विद्यमान है उसीका ध्यान रखती हुई जन्मान्तरमें भी उसकी प्राप्तिका सम्भव मानो ॥

भा०-जो पुत्रादि उत्पन्न हुए हैं वे सब पतिके ही अंश हैं उनमें एक रूपसे पति विद्यमान है। उनका पालन पोषण विधवाको करना चाहिये। पुत्रादिका पालन करना अन्य किसी पुरुषकी चाहना न करना और मुझ पतिसे ही पूर्ण-प्रीति रखना यह स्त्रीका परमकर्त्तव्य पुरुषको पहिलेसेही अभीष्ट था। अर्थात् प्रत्येक पुरुष चाहता है कि मेरी पत्नी ठीक २ पुत्रादि की रक्षा करे अन्य किसीभी पुरुषकी ओर निगाह न करे और मुझ से पूर्ण प्रीति रक्खे। सो पतिके मरने पश्चात् भी पतिके इसी अभीष्टकर्मको करती उसकी आज्ञाकारिणी हुई जन्मान्तरमें भी उसी पतिको प्राप्त होकर सुखका अनुभव करती है। इस मन्त्रमें दिधिषु पदको छोड़कर अन्य कोई ऐसा पद नहीं है जिससे नियोग वा विधवाविवाहका लेशमात्र भी अंश प्रतीत हो। वेद में रूढि अर्थ करना किसी विद्वान्का अभीष्ट नहीं है किंतु पूर्व मीमांसादि सब शास्त्रकारोंकी अनुमतिसे वेद में यौगिकार्थ लाना ही मुख्य है। उस यौगिकार्थके करने पर धारक वा पोषक अर्थसे पाणिग्रहीता पतिका विशेषण दिधिषु पद होता है इस लिये जो लोग दिधिषुनाम यहां पुनर्भू का मानते और तव पदका विशेषण करते हैं यह वास्तवमें भूल है। द्वितीय वे लोग यह भी सोचें कि जब दिधिषू दीर्घान्त स्त्री वाचक होता और ह्रस्वान्त पुंल्लिङ्ग होता है तो (दिधिषोः) यह ह्रस्वान्तका षष्ठी विभक्तिका एक वचन है इसी लिये पुंल्लिङ्ग है ऐसा अर्थ करने पर कुछ सन्देह शेष नहीं रहता। परन्तु स्वा० द० जीने ऋग्वादि भूमिका दिधिषु नियुक्त पति का नाम रक्खा है सो वह उनकी कल्पनामात्र है क्योंकि उसमें कोई प्रमाण नहीं मिल सकता तथा नियोगसे सन्तानोत्पत्ति करने वालेको पति कहना भी शास्त्र वा युक्ति दोनोंसे विरुद्ध है। तथा (जनित्वम्) का सन्तान अर्थ करना भी व्याकरणादिसे विरुद्ध है। इसी प्रकार

अन्य पदोंका अर्थ और अन्वय भी मूलसे विरुद्ध स्वा० द० जी ने किया है मन्त्रमें (शेषे) यह क्रिया पद लट्लकारके मध्यम पुरुषका एक वचन है उसमें क्रियापदका ही निघात स्वर है, सायणाचार्यादि भाष्यकारों ने भी क्रिया पदका ही अर्थ किया है परन्तु स्वा० दयानन्दने लिखा हैं कि (शेषे) बाकी पुरुषोंमें से। सो यहां सप्तमीका एक वचन लिखनेसे स्वर से तथा व्याकरणसे स्वा० दयानन्दका अनभिज्ञ होना सिद्ध है ॥

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रांसुभगां कृणु। दशास्यांपुत्राना धेहि पति मेकादशंकृधि ॥ ४ ॥

अ० - हे मीढ्वः - मेघवर्षणेन सर्वौषध्याद्युत्पादक इन्द्रदेव त्वमिमां विवाहितां वधूं सुपुत्रां सुभगां सौभाग्यवतीं च कुरु। अस्यां दश पुत्रानाधेहि दशपुत्रोत्पादनसमर्थामेनां कुरु। दश पुत्राः पतिरेकादशोयथास्यात्तथा कृधि कुरु॥

भा० - इन्द्रादयोऽमरा देवाएव विशेषेण मनुष्याभीष्टस्य साधका वाधका वा भवन्ति। सम्यगुपासिताः कार्यसाधका अन्यथाविरुद्धकृत्यैर्वाधकाश्चभवन्ति। सर्वदेवानामंशाअध्यात्मरूपेण मानुषदेहेऽपि सन्त्येव। अतएवोक्तं शतपथे „योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः सइन्द्रोऽथेयमिन्द्राणी। सम्यक्स्तुतिप्रार्थनापूजोपासनादि

ना संतुष्टा अस्मदादिदेहस्थाएवदेवा पुत्रोत्पादनादिकृत्यंसाधयन्ति । अतएव गर्भाधानमंत्रः संघटते—विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भंदधातुते अतएवास्मिन्मन्त्रेसन्तानोत्पत्त्यर्थमिन्द्रो देवः प्रार्थ्यते । एकादशमितिपदंपूरणप्रत्ययान्तम् । एकादशानां संख्यापूरकएकादशस्तम् । तस्य पूरणे डट् ॥ अ०५ । पा०२ सू० ४८॥अन्यर्थंका दशमितिद्वितीयैकवचनंनसंभवति। तेनैकादशपतय एकस्याः स्युरिति स्वा०दयानन्दस्य कल्पना मन्त्रार्थात्सर्वथैव विरुद्धाऽस्ति नियोगस्य पुनर्विवाहस्य चात्र नामैव नास्ति इन्द्रो विवाहितपतिरित्यर्थोऽप्रमाणएव । मीढ्वः इति पदस्यार्थो यदि वीर्यदानकर्त्तास्यात्तर्हि मेघपदस्य सोऽर्थः कस्मान्न भवति ? मेघमीढ्वन्पदयोरेकस्मान्मिहधातोरेव व्युत्पन्नत्वात् । एवं स्वा० दयानन्दकृतः सर्वएवमन्त्रपदार्थोऽन्वयश्च कपोलकल्पितो विरुद्धएवेति [उत यत्पतयोदश० अथर्व०५ । १७ । ८] इत्यथर्ववेदमन्त्रस्य संगतिमग्रिमसन्त्रार्थे वक्ष्यामः ॥

भाषार्थः—इन्द्र देवतासे पति प्रार्थना करता है कि हे (मीढ्वः)मेघ वर्षाके द्वारा सब ओषध्यादिके उत्पादक (इन्द्र)

इन्द्रदेव ! (त्वम्) तुम (इमाम्) इस विवाहित वहूको (सुपुत्राम्, सुभगाम्) अच्छे पुत्रोंवाली सौभाग्यवती (कृणु) करो (अस्यां दशपुत्रानाधेहि) इस वहू में तुम दश पुत्र उत्पन्न करो । अर्थात् दश पुत्र होनेका सामर्थ्य इसमें तुम्हारी कृपासे हो (पतिमेकादशं कृधि) दश पुत्र और ग्यारहवां पति जैसे हो वैसा कीजिये ॥

भा०—इन्द्रादि देवता ही मनुष्यके अभीष्टको सिद्ध करने वा हानि करने वाले होते हैं अर्थात् सम्यक् ठीक रीतिसे उपासना किये हुए देवता कार्यसाधक होते और विरुद्ध कृत्यों के द्वारा कार्योंके बाधक होते हैं । सभी देवताओंके अंश अध्यात्मरूपसे प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें विद्यमान ही हैं । इसी लिये शतपथ श्रुति है कि—"जो यह दाहिनी आंख में पुरुष है वह इन्द्र तथा वायीं आंखके पुरुषका नाम इन्द्राणी है"

स्तुति प्रार्थना पूजा और उपासना द्वारा सम्यक् सन्तुष्ट किये हम लोगोंके शरीरमें अनेक रूपोंसे रहने वाले देवता लोग ही पुत्रोत्पत्ति आदि मनुष्यके अभीष्टको सिद्ध करते हैं इसी लिये (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि गर्भाधान मन्त्रका अर्थ ठीक घटता है। आशय यह है कि जिस वर्षासे ओषधि वनस्पति वृक्षादिकी उत्पत्ति होती और ओषध्यादिके सेवन से शुक्रशोणितादि होनेसे मनुष्य पशु पक्ष्यादि की उत्पत्ति होती है अर्थात् सब प्राणियोंकी उत्पत्तिका मूल कारण जो वर्षा है उस वर्षाका अधिष्ठात्री देवता इन्द्र है। बहुत में थोड़ा अन्तर्गत होनेका सर्वतन्त्र नियम है। जैसे आकाशमें अवस्थित नीलेपनसे प्रतीत होने वाला समुद्र मुख्य सर्वोपरि बड़ा अनन्त जलस्थान है। पृथिवीके समुद्र नदी तालाव आदि जलाशय उसी अन्तरिक्ष समुद्रसे बने और बनते हैं उसीके अंश रूप हैं। इसीके अनुसार वीर्य सेचनकी थोड़ी २ शक्तिभी जो मनुष्यादिके शरीरोंमें आई हुई है वह इन्द्र देवताकी ही शक्ति है क्योंकि वीर्य सेचन भी एक प्रकार की वर्षा है । इसी लिये विवाह मन्त्रोंमें लिखा है कि (द्यौरहं

पृथिवीत्वम्) पुरुषको द्युलोक रूप और स्त्री को पृथिवी रूप वर्षा की तुल्यताको लेकर ही कहा गया है । सारांश यह निकला कि स्वभावसिद्ध इन्द्र देवताही इन सब सन्तानों को उत्पन्न करने वाला है । वेदमें की हुई प्रार्थनाका अभिप्राय यह है कि कभी कहीं किसी रुकावटसे वर्षा नहीं भी होती यदि होती भी है तो उससे सर्वत्र सन्तानादि नहीं होते यदि होते भी हैं तो निकृष्ट होते हैं इस लिये प्रार्थनाकी गयी कि इस स्त्री में अच्छे पुत्र अवश्य हों यह सौभाग्यवती भी अवश्य हो । (इमांत्वमिन्द्र०) मन्त्रमें एकादश पद पूरणप्रत्ययान्त है उसका अर्थ ग्यारहवां पति ऐसा होगा । दशपुत्र मन्त्र में स्पष्ट पढ़े ही हैं उन्हीं दशमें ग्यारहवीं संख्याको पूरी करने वाला पति है । तब यह अर्थ हुआ कि हे इन्द्र ! देवइन्द्रनाम रूपावच्छिन्न परमेश्वर! आपकी कृपासे इस स्त्रीके दश पुत्र और ग्यारहवां पति विद्यमान रहे । ऐसा सीधा निर्विवाद अर्थ अक्षरार्थसे सिद्ध होने पर एक स्त्रीके ग्यारह पति हों ऐसी कल्पना स्वा० दयानन्दने सर्वथा ही प्रमाण शून्य मन्त्रार्थसे विरुद्ध मनमानीकी है नियोग वा पुनर्विवाहका इस मन्त्रमें नाम भी नहीं । इन्द्र विवाहित पतिका नाम है यह भी कल्पना सर्वथा प्रमाण शून्य तथा अयुक्त है। मीढ्वः पद का अर्थ यदि वीर्यदान करने वाला किया जाता है तो उसी मिह धातुसे बने मेघ शब्दका वही अर्थ क्यों नहीं होता ? इस प्रकार स्वा० द० जी का किया इस मन्त्रका पदार्थ अन्वय सभी कपोल कल्पित प्रमाण रहित मनमाना होनेसे विचार शीलोंको त्याज्य है [उतयत्पतयोदश०]इस अथर्ववेदके मन्त्रकी सङ्गति हम आगे लिखेंगे। ऋ० मण्डल १० सू० ८५ मं० । ४० ॥

ओं—सोमः प्रथमोविविदे गन्धर्वोविविदउत्तरः । तृतीयोऽग्निष्टेपति—स्तुरीयस्तेमनुष्यजाः ॥२॥

अ०—उत्पत्तिकालादेव सोमदेवतायाः प्राथम्यात्प्राधान्याच्च सोमो देवः कन्यां प्रथमो विविदे विन्दते लभते सर्वावयवेषु प्राप्तो भवति । तदनन्तरं तां कन्यां गन्धर्वो देवो विविदे विन्दते । हे कन्ये ! ते तव तृतीयोऽग्निदेवः पतिर्भवति तथा ते तव तुरीयो मनुष्यजाः मनुष्यः पतिर्भवति । अत्र चतुर्थस्य मनुष्यजात्वकथनरूपार्थापत्तेः सिद्धं सोमादयस्त्रयो न मनुष्यजाअपितु सर्वशास्त्रप्रसिद्धा देवाएवग्राह्याः।

भा०—सुश्रुतशारीरस्थाने सामान्येन गर्भस्याग्नीषोमीयत्वं स्पष्टमुक्तम् । स्त्रीणां च सर्वासां सर्वावस्थासु पुरुषापेक्षया सोमदेवेन चन्द्रमसा विशिष्टः सम्बन्धो लोकसिद्धः शास्त्रसिद्धश्चास्ति। अतएव चन्द्रमुखीत्याद्युपमाने चन्द्रगुणविशेषारोपो दृश्यते। यद्यपि सामान्येन गर्भादेव कन्यादेहे सोमदेवस्यान्यदेवापेक्षया प्रधानः प्रवेशस्तथापि तस्य विशिष्टं प्राधान्यमष्टमवर्षायुषि व्यज्यते। अष्टमवर्षावस्थायां कन्याशरीरावयवेषु सोमोदेव उद्बुद्धो दृश्यते तस्मिन् वर्षे सोमकान्तिरपि कन्यायां विशिष्टा जायते। अतएव ऋग्वेदे पवमानसूक्तेषु लिखितमस्ति [सोमोगौरी अधिश्रितः] सोमोदेवो गौर्यामधिश्रितस्तदानीं सोमदेवस्य कन्यायामा-

धिपत्यं भवति। यद्यपि सामान्येनान्यावस्था-
स्वपि स्त्रीणां गौरीपदवाच्यत्वं सम्भवेत्तथापि
[अष्टवर्षाभवेद्गौरी] इतिस्मृतिपरिभाषाब-
लादष्टमवर्षे विशेषेण मुख्यतया वा गौरीपदवा-
च्यत्वमिष्टम्। अर्थादष्टमे वर्षे कुमारीदेहेऽधि-
ष्ठानरूपस्य सोमतत्त्वस्य तदभिमानिसोमदेव-
स्य च प्राधान्यं भवति। नवमवर्षेच गन्धर्वदे-
वस्य कुमारीदेहे प्राधान्येन प्रवेशः प्राकट्य-
माधिपत्यं च जायते। नवमे तस्या रोहिणी-
संज्ञा भवति। नवमे कुमार्यां गाने विशिष्टा रु-
चिर्जायते तच्च गन्धर्वप्रवेशलिङ्गम्। दशमवर्षा-
यषि तस्याः कन्यासंज्ञाभवति तदानीं तस्या अ-
ग्निर्देवो विशेषेण पालकत्वात्पतिर्भवति। अग्नि-
तत्त्वस्य तदभिमानिदेवस्य च दशमवर्षे कुमा-
रीदेहे प्राधान्येन प्रवेशः प्राकट्यमाधिपत्यं च
जायते। तस्मादेव तदानीं कुमार्याः कन्येत्यन्व-
र्थं नाम जायते। कनी—दीप्ति कान्तिगतिषु दी-
प्त्यादयो विशेषेणाग्निगुणास्तस्यां व्यज्यन्ते त-
स्मात्साकन्येत्युच्यते। दशमेऽग्निप्रवेशादेव सू-
क्ष्ममार्त्तवमुत्पद्यते। उत्पत्तेरनन्तरं सञ्चीयते
सञ्चयानन्तरमार्त्तवं बहिः प्रादुर्भवति। सञ्चय-
कालार्थमिदमुक्तम्—ततऊर्ध्वंरजः स्वलेति। अ-
ष्टमादिवर्षेषु देवतानामाधिपत्यकाले कुमार्या
विवाहो न कार्यइत्यपि वेदाशयः। अपितु यदा

सोमादयः स्वंस्वमाधिपत्यं त्यक्त्वाऽन्तेऽग्निदेवः स्वाधिपत्यं परित्यज्य मनुष्याय दद्यात्तदा विवाहः कार्यः स च दशमवर्षानन्तरमेकादशादिवर्षकालो यथासम्भवो ग्राह्यः मनुष्यजा इति पदं विट्प्रत्ययान्तं तुरीयविशेषणमेकवचनं विश्वपा सोमपावदाकारान्तपुंल्लिङ्गः शब्दः । गमहनजन० । अ०३ पा०२ सू० ६७ इत्यनेन विट्प्रत्ययः । विड्वनोरनु० । अ० ६ । ४ । ४१ । इत्याकारादेशः । इत्थमनेन मन्त्रेणाप्येकएव नार्या मानुषः पतिरायाति । अनेकपतिकल्पना चायुक्तैव महदाश्चर्यमेतद्यत्स्वा० दयानन्देन मनुष्यजाइति पदं बहुवचनं ज्ञातम् । यस्यैकवचनबहुवचनयोरपि बोधो नास्ति तं संस्कृतानभिज्ञाएव महर्षिपदेन भूषयन्ति ॥

भाषार्थ.—गर्भोत्पत्तिके समयसे ही सोम देवताके प्रधान आदि कारण होने से (सोमः प्रथमो विविदे) सोमदेव कुमारी कन्याको पहिले प्राप्त होता है अर्थात् सब अङ्गोंमें विशेषतासे प्रविष्ट होता है (उत्तरः) उसके बाद (गन्धर्वो विविदे) गन्धर्व देवता प्राप्त होता है । हे कन्ये (ते) तुम्हारा (तृतीयः) तीसरा (अग्निः) अग्निदेव (पतिः) पति होता और (ते) तुम्हारा (मनुष्यजाः) मनुष्यसे उत्पन्न मनुष्य पुरुष (तुरीयः) चौथा पति होता है । इस मंत्र में चौथे पति को मनुष्यसे उत्पन्न कहा है इसकी अर्थापत्तिसे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि सोमादि पहिले तीन मनुष्य से उत्पन्न मनुष्य पति नहीं हैं किन्तु सब वेदशास्त्रोंमें प्रसिद्ध सोमादि तीनों

देवता हैं उन्हींका ग्रहण यहां करना ठीक है। स्वा० दयानन्दने चौथेको मनुष्य माना तब यदि पहिले तीन भी मनुष्यसे पैदा हुए मानो तो चौथेको मनुष्यजाः कहना निरर्थक है। और चौथा मनुष्य है तो दयानन्दी लोग बतावें कि पहिले सोमादि तीन किससे पैदा हुए हैं?। मनुष्य पति एक ही होता है यह स्मृतियोंका सिद्धान्त सर्वथा वेदानुकूल है (न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते)॥

भा०—सुश्रुत ग्रन्थके शारीरस्थानमें सामान्य कर गर्भको अग्नीषोमीय कहा है क्योंकि (शुक्रं सौम्यमार्त्तवमाग्नेयम्) वीर्य सोमतत्त्व प्रधान होता इसीसे श्वेत होता है और आर्त्तव स्त्रीका रक्त जो गर्भका कारण है वह अग्नि तत्वप्रधान होता इसीसे लाल होता है इन्हीं दोनोंके मेलसे गर्भ बनता है। इस कारण गर्भस्थिति में अग्नि सोम दो देवता प्रधान होते हैं। और सब स्त्रियोंके शरीरों में सब अवस्थाओंमें पुरुषोंकी अपेक्षा सोम नाम चन्द्रमा देव तत्त्वकी अधिकता लोक और शास्त्र दोनोंसे सिद्ध है इसी कारण स्त्रीके मुखको चन्द्रमा की उपमा देनेमें चन्द्रमाके किन्हीं विशेष गुणोंका आरोप वा विद्यमानता स्त्रीमें दिखायी जाती है। यद्यपि सामान्य कर गर्भावस्थासे ही कन्याके देहमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा सोम तत्त्व देवताका प्रधानतासे प्रवेश वा प्रकटता होती है तथापि उस सोम देवकी विशेष प्रधानता कन्याके शरीरमें आठवें वर्ष प्रकट होती है अर्थात् कन्याका आठवां वर्ष लगते ही उसके सब शरीरके अंगोंमें सोमदेव प्रकट व्यक्त हुए दीखते हैं। उस आठवें वर्षमें चन्द्रमाकी कान्ति कन्यामें विशेष हो जाती है। इसीलिये स्मृतिकारोंने आठवें वर्ष कन्याकी गौरी संज्ञा की है और अन्य समय कोई गौरी कहे वा लिखे तो वह सामान्य दशामें गौण होगा। चन्द्रमा अर्थात् सोमदेवता गौर वर्ण है उसकी विशेष कान्ति कन्यामें आठवें वर्ष होने

से कन्या गौरी कही वा मानी जाती है। और ऋग्वेदके नवम काण्डस्थ पवमान सूक्तोंमें लिखा है कि [सोमो गौरीअधिश्रितः] सोमदेव गौरी नाम आठ वर्षकी कन्यामें विशेष कर ठहरता है अर्थात् उस समय उसका प्रधान रक्षक अधिपति सोम होता है। तथा इसके पूर्व सातवें आदि वर्षमें भी अन्य किसी देवताकी प्रधानता कन्यामें नहीं होती किन्तु सोमकी अपेक्षा सब गौणही रहते हैं इसी लिये मन्त्रमें सोम प्रथम कहा गया है। प्रयोजन यह कि आठवें वर्षमें कन्याके देहमें अधिष्ठानरूप सोमतत्व और सोमाभिमानिदेव दोनोंकी प्रधान प्रकटता वा अधिकार होता है इसी कारण रक्षक होनेसे वह सोम आठ वर्ष तक कन्याका पहिला पति होता है: नववें वर्षमें कन्याकी रोहिणी संज्ञा होती है उसी समय उसके देहमें प्रधानतासे गन्धर्वदेवका प्रवेश प्रकटता वा विशेष अधिकार होनेसे गन्धर्व उसका रक्षक पति होता है। नववें वर्ष कन्याकी गानेमें अन्य समयापेक्षा विशेष रुचि होना गन्धर्वके प्रवेशका चिन्ह है। प्रयोजन यह कि जिस देवता में जो वा जैसा सूक्ष्मतत्व है उसी तत्वके साथ वैसाही उसमें अधिष्ठातृ देवपन भी है वही तत्त्व जब २ जिस २ मनुष्यादि शरीरमें जैसा २ प्रबल पड़ जाता है वैसाही उसका आधिपत्य वा अधिकार उस शरीरादिमें माना जाता है। पुरुषका भी स्त्रीपर एक प्रकारका अधिकार आधिपत्य मालिकपन होता इससे वह उसका पति कहाता है वैसेही सोमादि देवताओं का अधिकार आधिपत्य दिखाना मन्त्रमें अभीष्ट है। दशवें वर्षके आयुमें उसकी कन्या संज्ञा होती है। उस समय उसका विशेष रक्षक होनेसे अग्निदेव पति होता है। अर्थात् अग्नितत्त्व और उसके अभिमानी देवताका दशवें वर्ष कुमारीके शरीरमें प्रधानतासे प्रवेश प्रकटता और अधिकार होता है। इसीलिये उस समय उसका कन्या नाम सार्थक होता है क्योंकि

कनी धातुके दीप्ति कान्ति और गति तीन अर्थ हैं। अग्नितत्व सम्बन्धी दीप्ति और कान्ति विशेषकर दशवें वर्ष प्रकट होती इससे कन्या नाम योगरूढ़ हुआ। तथा दशवें वर्ष अग्नितत्व की प्रधानतासे ही उसके शरीरमें सूक्ष्म आर्त्तव उत्पन्न होता है और उत्पत्तिके बाद आर्त्तवका संचय होता है तथा संचय के पश्चात् ११। १२ वें वर्षोंमें प्रकट होता है। आर्त्तवके संचयकालमें अग्निदेवका आधिपत्य कन्यापर होता है उस समय कुमारीका विवाह नहीं करना चाहिये यह भी वेद का आशय जानो क्योंकि देवता लोग जब अपना२ अधिकार पूरा कर२ एक दूसरेको सौंपते जावें (सोमोददद्गन्धर्वाय०) सोम गन्धर्वको देवे गन्धर्व अग्निको और अग्नि अपना अधिकार समाप्त करके मनुष्यको देवे तब मनुष्यके साथ विवाह होके मनुष्यका अधिकार कन्यापर होना चाहिये तभी वह पति बने यह शास्त्रानुकूल उचित है। इससे बाल्यावस्थामें कन्या का विवाह करना अनुचित सिद्ध हुआ। इस कारण दशवें वर्षके पश्चात् ग्यारहवें आदि वर्ष में कन्याका विवाह देश-काल बलाबल आदि देखकर करना चाहिये। मनु जी ने जो आठ वर्षकी कन्या विवाह कहा है वह अग्निहोत्रादि धर्म की बाधारूप आपत्कालके लिये कथन है (ततऊर्ध्वंरजस्वला०) इत्यादि स्मृतियोंका कथन शरीरके भीतर आर्त्तवके संचयका आरम्भ दिखानेके लिये है किन्तु यह आशय नहीं है कि उस का विवाह न करे तो पाप लगेगा। परन्तु यह आशय स्मृतियोंका अवश्य है कि रजोधर्म प्रसिद्धिमें होने लगे और उस को जानता देखता हुआ भी यदि विवाहका उद्योग पितादि न करे तो पाप अवश्य लगेगा। प्रयोजन यह कि प्रसिद्ध में रजस्वला होनेसे पूर्व वा होने तक विवाह कर देना चाहिये उसी समय मनुष्यके योग्य होनेसे अग्निदेव मनुष्य पतिको सौंपता है। यदि उद्योग करते २ अच्छा वर न मिलने आदि

कारणसे देर हो जाय और रजोधर्म प्रसिद्धिमें होता भी रहे तो पितादिको पाप नहीं लगेगा। इस (सोमःप्रथ०) मंत्रमें मनुष्यजापद आकारान्त पुल्लिङ्ग एक वचन तुरीय पदका विशेषण है इसको स्वा० द० जी ने भ्रान्तिसे वहुवचन मानकर ११ पति तक कल्पना की है सो मिथ्या है। बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस मनुष्यजाः पद को स्वा० द० ने एक वचन भी न जान पाया उनको संस्कृतानभिज्ञ मूर्खलोग महाविद्वान् वा महर्षि कहते हुए कुछ भी संकोच नहीं करते ॥

इस (सोमःप्रथमो०) मंत्रका अभिप्राय यह भी झलकता है कि देवता और मनुष्य सम्बन्धी तत्त्वोंमें बड़ा अन्तर है यदि देवताओंके अधिकार के समय मनुष्यके साथ कन्या का मनसे भी सम्बन्ध होगा तो प्रबल देवत्व मनुष्य सम्बन्धको अवश्य धक्का देगा जिससे हानि अवश्य होगी तत्काल उस का बुरा फल किसी को ज्ञात न हो यह सम्भव है। अर्थात् देवताओंका भोग स्थूल नहीं किन्तु वासनामात्र सूक्ष्म भोग है इसीलिये यह लिखा है कि (नवै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति०) यहां श्रुति में मनुष्योंके तुल्य स्थूल खाने पीनेका देवोंको निषेध है और अनेक मंत्रोंमें इन्द्रदेवका सोम पीना स्पष्ट लिखा है वह सूक्ष्म वासनामात्र लेनेसे अभिप्राय है। जैसे हम मनुष्य लोग खा पी के हृष्ट पुष्ट संतुष्ट होते हैं वैसे ही देवता लोग अर्पण किये वस्तुको देखजानके वासना लेकर ही हृष्ट पुष्ट संतुष्ट होजाते हैं इतना ही उनका भोग है। इसी के अनुसार सोमादि देवता कन्याके पहिले पति होते हैं तब वहां भी मनुष्यका सा स्थूलभोग उनका कन्याके साथ कुछ भी नहीं होता किन्तु वासनामात्र भोग होता है। कन्याके मन आदि सब सूक्ष्मांश उस २ समय सोमादि देवों के आधीन होते हैं पर वह अपने अज्ञानसे उन २ देवताओं की छायाको नहीं जान पाती है। प्रयोजन यह है कि कुमारी पर जब देवताओं का आधिपत्य होता है उस समय उसके साथ कोई पुरुष मन से

भी सम्बन्ध करेगा तो देवता लोग उसको धक्का देंगे। उस कन्याके मन आदि मनुष्य से सम्बन्ध करने योग्य नहीं हैं। कोई राजादि किसी वस्तुको देखने मात्रके लिये भी जबतक अपने पास रखना चहता है तबतक उस वस्तुकी चाहना कोई साधारण मनुष्य करे तो उसकी आफत आजाय। और जब प्रसन्नतासे राजादि उसको दे देवे तब हर्ष मंगल होता है वैसे ही जब देवता लोग अपना २ अधिकार समाप्त करके मनुष्य को देवें तब मनुष्य के साथ ११ वें आदि वर्षमें कन्याका विवाह होना चाहिये॥

अबतक पांच मन्त्रोंका स्पष्ट अर्थ लिखनेसे हमारे पाठकों को अच्छे प्रकार ज्ञात हो गया होगा कि वेदके किसी मन्त्र के किसी एक पदसे भी लेशमात्र भी नियोग वा पुनर्विवाह का नाम मात्र भी पक्ष सिद्ध नहीं होता केवल धींगा धांगीसे स्वा० द० जी ने वेदसे नियोग सिद्ध करनेका अड़ंगा लगाया था। पर अब वर्त्त० आर्यसमाजी लोग उसी निर्मूल पक्षकी सिद्धिके लिये एक नया मंत्र पेश करते हैं जो स्वा०द० जीको उनके वर्त्तमान समयमें नहीं मिला था उसको हम यहां लिखते हैं—

उतयत्पतयोदश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः। ब्रह्माचेद्धस्तमग्रहीत्सएवपतिरेकधा॥ ८॥ अथर्व० ५। ४। १७। ८॥

भाषार्थ—(उत) और (स्त्रियाः) स्त्रीके (यत्) जो(पूर्वे) विवाह होनेसे पहिले (अब्राह्मणाः) ब्राह्मणसे भिन्न ब्राह्मणका निषेध यहां उपलक्षणार्थ है तिससे ब्राह्मणादि सब मनुष्योंका निषेध जानो, अर्थात् पहिले दशपति मनुष्यसे भिन्न देवता हैं। यही बात ऋग्वेद के [तुरीयस्ते मनुष्यजाः] पद की अर्थापत्तिसे भी सिद्ध होजाती है] (दश) दश (पतयः

पति होते हैं (ये दशों वास्तवमें उसके पति नहीं न वह स्त्री उनकी पत्नी बनती है किन्तु किसी प्रकारके आधिपत्य स-दृशताको लेकर वे सोमादि देवता लोग शास्त्रमें पति कह-लिये गये गये हैं) (चेत्) यदि (ब्रह्मा) ब्राह्मण (हस्तमग्रहीत्) मंत्र पूर्वक पाणिग्रहण करे तो (स एव) वही (एकधा) एक खास प्रकारका (पतिः) पति होता है । अर्थात् पति पत्नी शब्दोंका मुख्य वाच्यार्थ यह है कि स्थूल शरीरका संयोग हो और दोनोंके संयोगसे पुत्रादि उत्पन्न हों यही एक प्रकारका पति पत्नी संबन्ध लोक प्रसिद्ध है । वैसे परमेश्वर सबका र-क्षक होनेसे सबका पति ही है । संस्कृतमें राजाका नाम नृप वा नृपति प्रसिद्ध है, नर नारी स्त्री पुरुष सभी प्रजाका पति राजा कहा जाता है । परन्तु पति होनेपर उन २ स्त्रियोंके साथ राजाका पत्नीभाव नहीं हो जाता वैसे ही सोमादि दे-वता भी सब स्त्रियोंके पति नाम रक्षक उस २ समय हुआ करते हैं पर ये सब स्त्री पुरुष व्यवहारके लिये पति नहीं है इसीसे स्त्री उन २ की पत्नी नहीं कहाती है । अब दश पति मंत्रमें लिखे कौन हैं इसका विचार यहां थोड़ासा लिखते हैं—

अथर्वके इसी १७ सत्रहवें सूक्तके पहिले दूसरे मन्त्रोंमें देखो वहां ऋग्वेदके अनुकूल पहिली बात तो यह लिखी है कि (सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायाम्) इससे सोम पहिला पति-२-अकूपार । ३—सलिल । ४ मातरिश्वा । ५ मयोभूः ६ आपः-७ व-रुण । ८ मित्र । ९-अग्नि । १० बृहस्पति । यह ऊपर लिखा विचार तो सम्भव है ही तथापि अगला विचार वा समाधान मुख्य है ।

इन्द्राग्नीद्यावापृथिवीमातरि-श्वामित्रावरुणाभगोअश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतोब्रह्मसोम इमांनारीं प्रजयावर्धयन्तु ॥ अथर्व० १४ । १ । ५४ ॥

यह अथर्ववेदके विवाह प्रकरणका मन्त्र है। इसमें १-इ- न्द्राग्नी, २ द्यावापृथिवी, ३ मातरिश्वा, ४-मित्रावरुणा, ५ भगः, ६-अश्विना, ७-बृहस्पतिः ८ मरुतः ९-ब्रह्म, १० सोम, इस मन्त्रमें कहे ठीक २ ये दश देवता हैं, ये सब सूक्ष्म कारणरूप से प्रजा द्वारा स्त्री को बढ़ाया करते हैं। वास्तवमें (उतय- त्पतयोदश०) मन्त्रमें ये ही दश देवता रक्षा वृद्धि करने वाले होनेसे पति कहे गये हैं। क्योंकि मनुष्य पति भी अन्नादि द्वारा नारी को बढ़ाने वाला होनेसे ही पति कहाता है इससे ये सब पति होनेसे ही स्त्रीको प्रजासे बढ़ा सकते हैं। पर स्थूल गर्भस्थापक स्थूल कारण एक ही मनुष्य पति होता है। इन्द्राग्नी आदि सूक्ष्म देवताओं की कृपा दृष्टि वा उनके संतुष्ट हुए विना केवल मनुष्य पतिकी चेष्टा से संतान हो जाते तो आज जिन निर्वंशियों पर देवताओंका कोप हो रहा है वे पुत्रका मुख क्यों नहीं देख लेते ?। ऋग्वेदमें कन्याके तीन देवता पति कहे और अथर्वादिमें दश कहे इन दोनोंमें कुछ भी विरोध नहीं क्योंकि तीनमें दश भी अन्तर्गत हो सकते हैं इस लिये जो तीन हैं वे भी दश हैं और जो दश हैं वे भी तीनमें समाविष्ट हो सकनेसे तीन हैं। और पातिव्रत धर्मकी अधिक प्रबलता दिखानेके लिये वेदमें यह भी लिखा गया कि (ब्राह्मणएव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः) ब्राह्मणकीअपेक्षा पति पत्नी भाव क्षत्रियादिमें गौण रहेगा तथा शूद्रोंकी अपे- क्षा क्षत्रिय वैश्योंमें प्रबलता रहेगी। ऐसे ही कारण क्षत्रि- यादिमें कभी नियोग भी हुआ पर ब्राह्मण कुलोत्पत्तिके लिये कभी नियोग नहीं हुआ। शूद्रों में तो अब भी धरौने नाम से प्रसिद्ध एकके मर जाने पर अन्य पुरुष से सम्बन्ध होते ही हैं। स्वा० द० जीने गन्धर्वको द्वितीय नियुक्त पति लिखा है कि भोगाभिज्ञ होनेसे द्वितीय की गन्धर्व संज्ञा है। १—नि- युक्तको पति कहना नियोगके नियमसे तथा युक्ति प्रमाणोंसे भी विरुद्ध है॥

२=द्वितीय ही भोगाभिज्ञ क्यों हुआ ? तीसरे चौथे क्यों नहीं ? ।

३=तीसरे के शरीरस्थ धातु क्यों जलने लगते हैं दूसरे चौथे आदिके क्यों नहीं जलते ? इसमें युक्ति वा प्रमाण क्या है

४=नियुक्त पुरुष पतियोंके गन्धर्व अग्नि आदि नाम हैं इसमें प्रमाणही क्या है ? । प्रयोजन यह कि स्वा० द० का कथन सर्वथा मिथ्या है ।

नियोग विषयमें छठा मन्त्र स्वा० द० जीने यह (अदेवृघ्नि०) इत्यादि अथर्व १४ काण्डका लिखा है। उसे देखो

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यःसुयमासुवर्चाः । प्रजावतीवीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निंगार्हपत्यंसपर्य ॥

इस मन्त्र पर विशेष विचार लिखनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसमें केवल ऐसे दो ही पद (अदेवृघ्नि) (देवृकामा) हैं जिनसे नियोगका गन्धभी नहीं निकलता पर अपनी कल्पनासे स्वा० द० जी ने नियोगको फिर भी घसीटा है । पहिले पदका अर्थ यह है कि हे स्त्री तू अपने देवरको दुःख देने वा पीड़ा पहुंचाने वाली अथवा मारने वाली मत हो यदि कोई कहे वा कहीं लिखा हो कि (अभ्रातृघ्नि) भ्राता को कष्ट पहुंचाने वाली मत हो तो क्या वहां स्वा० द० जी यह कल्पना कर लेंगे कि भ्रातासे भी नियोग कर लेवे । कदाचित् नियोगका लटका स्वा० द० जी को अधिक लगा था वात २ में नियोग कराना चाहते थे तो ऐसा भी लिख देना आश्चर्य ही क्या था ? द्वितीय (देवृकामा) शब्द का अर्थ यह है कि देवरकी कामनावाली होवे कि मेरे देवर उत्पन्न हो मेरा पति एकही असहाय न हो देवर होंगे तो

यह देवर मेरे पतिरूप अपने भ्राताको सहायता सुख देगा। अथवा मेरा देवर बना रहे ऐसी कामना वाली हो। यदि देवरको भी पति बना लिया तब तो देवर न रहा वह पति ही हो गया उस दशामें देवृकामा नहीं बनेगा। यदि हम स्त्री के लिये ऐसा लेख दिखलावें कि पुत्रकामा पुत्रको चाहने वाली तब क्या पुत्रसे नियोग करने वाली ऐसा अर्थ स्वा० द० कर लेंगे? यदि ऐसा हो तो महाअनर्थ महाआश्चर्य अवश्य है। प्रयोजन यह कि अब हम नियोग विषयक मन्त्रार्थ विचार यहां समाप्त करते हैं। वेदके किसी मन्त्र के किसी एकभी पदसे नियोग वा पुनर्विवाहादि कुछ भी नहीं निकलता है केवल वेदका अनर्थ स्वा० द० ने किया है॥

नियोग विषयक मन्त्रोंका अर्थ विस्तारसे लिखा गया है इस लिये संक्षेपसे सबका उपसंहार अन्तमें दिखाये देते हैं। पहिले मन्त्रमें (विधवेव देवरम्) दृष्टान्त वाक्य टीका वा लग्न चढ़ जाने पश्चात् वर के मर जाने पर उस कन्या का विवाह देवरके साथ कर देना मनु जी ने कहा है उसका मूल यह (विधवेव देवरम्) मन्त्र वाक्य है वेद में नियोग वा पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं इसी कारण उसको सब ऋषि महर्षियोंने नहीं माना और जिनने माना है उनने भी सब कालके लिये और सब मनुष्योंके लिये नहीं रक्खा। वेदोक्त होता तो सर्वदेशी होना भी सम्भव था। पर नियोग एक देशी सिद्ध है। द्वितीय तृतीय मन्त्रोंमें नियोग वा पुनर्विवाह की सिद्धिके लिये कोई पद वा वाक्य ही नहीं है। उनके ठीक २ अर्थसे नियोगका अर्थ करना सर्वथा कट जाता है चौथे मन्त्रमें इन्द्र देवतासे अर्थात् इन्द्र नाम रूप वाले ईश्वर से प्रार्थना है कि इस विवाहिता स्त्रीके दशपुत्र और ग्यारहवां पति हो नियोगका नाम भी मन्त्रमें नहीं पांचवें (सोमः प्रथमो०) का और छठे (उतयत्पतयोदश०) मन्त्रका आशय यह है कि सोमादि देवताओंका जिनको सोमादि तत्व भी

कह सकते हैं क्योंकि सोमादि देवताओंके अधिष्ठान ही तत्त्व कहाते हैं और अधिष्ठाता देव हैं । दोनोंके एक नाम रूप हैं शरीर तथा जीवके तुल्य भेद है । उन २ सोमादि देवों वा तत्त्वोंकी कन्याके शरीरमें उस २ आठवें आदि वर्षमें अधिकता वा प्रबलता होती है वहीं २ तत्त्व उस २ समय उसका रक्षक होनेसे पति कहाता है । सोमकी प्रबलता समाप्त होने पर गन्धर्वकी अधिकता होती उसकी समाप्तिमें अग्नितत्त्व बढ़ता है अग्नितत्त्वकी प्रबलतासे ही स्त्री के शरीर में आर्त्तव रक्त बनता है क्योंकि आयुर्वेदमें आर्त्तवको आग्नेय=अग्नितत्त्व प्रधान कहा है । इसी आर्त्तवके भीतर संचित होने पर कन्याके उरोज—स्तन छातीमें उठते हैं तभी वह मनुष्य पुरुषके योग्य होती है । यह एक कहनेकी वैदिक शैली है कि सोम गन्धर्वको गन्धर्व अग्निको और अग्नि मनुष्य पतिको देता है । इसीको लोकरीतिमें लाकर ऐसे भी कह सकते हैं कि सोम गन्धर्वके योग्य गन्धर्व अग्निके योग्य और अग्नि उस कन्याके शरीरको मनुष्यके योग्य करदेता है तभी मनुष्यके साथ विवाह होता वा होना चाहिये । सोमादि कोई शरीरधारी नहीं हैं जिनके संसर्गसे कन्याको कोई दोष लगे। वास्तवमें ब्राह्मणादि द्विजोंमें एक ही मनुष्य एक स्त्रीका पति होता है। द्वितीयहो तो पातिव्रत धर्म नहीं ठहर सकता । द्वितीय (उतयत्पतयो०) मन्त्रका आशय भी (सोमः प्रथमो०) मन्त्रके सर्वथा अनुकूल है क्योंकि अथर्वके उसी सूक्तके आरम्भमें पहिला पति सोम राजाको ही लिखा है । जैसे कहीं प्राण कहनेसे दशका कहीं पांचका और प्रकरणानुकूल कहीं कहीं एकका ग्रहण होगा वैसे ही सोम गन्धर्व और अग्नि इन तीनसे अथर्वके कहे दशोंका ग्रहण हो जायगा । वरुण आप आदि सोमके अन्तर्गत समझे जांयगे । अन्य यथासम्भव अग्नि आदिमें समझे जांयगे ।

क्योंकि एक २ वस्तुके अनेक प्रकार होनेसे अवान्तर भेद अनेक होजाते हैं। जहां उनमें भेद विवक्षाकी प्रधानता अपेक्षित होती है वहां वे सब वस्तु भिन्न २ करके गिने वा माने जाते हैं। और जहां उन सब अवान्तर भेदोंमें एक रूपसे ठहरा मूल तत्त्व अपेक्षित होता है वहां प्रधान एक ही नाम से व्याख्यान किया जाता है। वेदके एक स्थलमें लिखा है कि (एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः) एकही रुद्र है द्वितीय वा दो नहीं तथा (असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राः) असंख्य हजारहां रुद्र हैं। ये दोनों ही वेदके कथन ऊपर लिखे अनुसार ठीक हैं। प्रयोजन यह कि वेदमें तत्त्वज्ञान सम्बन्धी विचार मुख्य है एक स्त्रीके अनेक पति होना अच्छा होता तो वेश्या निकृष्ट क्यों समझी जाती ?। इस लिये (स एव पतिरेकधा०) श्रुति और (एकएव पतिर्नार्याः०) इत्यादि स्मृतिसे एकही पति स्त्रीका हो यही मुख्य वा सनातनधर्म है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि उसी अथर्वके (उतयत्पतयो दश०) मन्त्रको देख कर समाजी लोग कूदने लगे कि जिसके चौदहवें काण्डमें (इन्द्राग्नी०) इत्यादि मन्त्रमें लिखे दश रक्षक देवताओंका पति होना युक्ति प्रमाण दोनोंसे सिद्ध है और उस मन्त्रको स्वा० द० ने भी विवाह प्रकरण में लिखा है तो भी इन दयानन्दियोंको दश पतियोंका पता न लगा। अब इन दयानन्दियों से पूछना चाहिये कि अथर्वके मन्त्रमें वे पहले दश पति अब्राह्मण नाम ब्राह्मणसे भिन्न कहे हैं सो बतलाइये कि वे कौन२ कोरी चमार आदि जातिके होंगे, आर्य्यसमाजी ब्राह्मणोंको ऐसी स्त्री मिलनी चाहिये जिसके पहिले अन्य जातियोंके दशपति हो चुके हों तब ग्यारहवें ब्राह्मणको वह करे आ० समाजियोंके सिद्धान्तानुसार वेद मन्त्रका उक्त आशय निकलता है सो क्या आ० समाजी ब्राह्मण वैसी औरतको स्वीकार करेंगे ?॥

ब्राह्मणसर्वस्व भाग २ अं० ९ में चूरू निवासी सेठ माधवप्रसाद खेमका ने एक नोटिस छपाया था जिसका संक्षेप आशय यह था कि—वेदप्रकाश मासिक पत्र वर्ष ७ मास १२ में पं० तुलसीराम जी ने विधवा के पुनर्विवाह को वेदानुकूल होना जताया है । इसलिये पं० तु० रा० जी से निवेदन है कि वेद मन्त्रों वा श्रौत गृह्यसूत्रोंका कोई ऐसा पुष्ट प्रमाण पते और अक्षरार्थ सहित लिखें जिस के मूल में स्पष्ट यह आज्ञा हो कि द्विजों की विधवाओं का पुनर्विवाह कर्त्तव्य धर्म है । ऐसा लेख ता० १ जून सन् १९०४ ई० तक पं० तु० रा० जी मेरे पास भेजेंगे तो बड़ी कृपा करेंगे और २५) रु० पं० तु० रा० जी को भेंट किये जायंगे । प्रमाण ढूंढ़नेके लिये ३ मास की अवधि भी कुछ कम नहीं है फिर प्रमाण आने पर भेंट भी मिलेगी । इत्यादि ॥

ह० माधवप्रसाद खेमका वैश्य चूरू ।

इसके पश्चात् पं० तु० रा० ने जो २ प्रमाण दिये और सेठ माधवप्रसाद जी ने जो जवाब दिये वे ज्यों के त्यों आगे देखिये—

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

॥ सत्यमेव जयते नानृतम् ॥

वेदप्रकाश भा० ८ अं० ३ पृष्ठ ७६ से सम्पादक पं० तुलसीराम स्वामी मेरठने "विधवा को दूसरा पति विधान" शीर्षक में दो वेद मन्त्र अर्थ सहित लिखे हैं उन को नीचे ज्यों का त्यों लिखते हैं । परमेश्वर आज्ञा देता है कि:—

इयंनारीपतिलोकंवृणाना निपद्यतउपत्वामर्त्यप्रेतम् । धर्मंपुराणमनुपालयन्ती तस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि ॥ उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकंगतासुमेतमुपशेषएहि । हस्तग्राभस्यदिधिषो-

स्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ ॥ अथर्व० १८ । ३ । १-२ ॥

हे (मर्त्य) मनुष्य (इयंनारी) यह स्त्री [प्रेतम्] मृतपतिके (अनु) पश्चात् यदि (पतिलोकम्) पतिस्थान (श्वशुरालय) को (वृणाना) फिर वरती हुई हो और (त्वा) तेरे (उप) समीप (निपद्यते) नितरां प्राप्त होती है तो [पुराणम्] सनातन (धर्मम्) धर्मका (अनुपालयन्ती) अनुसरण करती है (तस्यै) उस स्त्रीके लिये (इह) इस लोकमें (प्रजाम्) सन्तान (च) और (द्रविणम्) धन (धेहि) धारण करा।

भावार्थ—पतिके मरणानन्तर यदि स्त्री पुनः पत्यन्तर—(दूसरापति) करके पतिगृह में रहा चाहे तो यह सनातन धर्मका पालन है। हे मनुष्य तू उस स्त्री को धन सन्तान से इस संसार में युक्त कर॥

द्वितीय मन्त्रका पदार्थ—(नारी) हे स्त्री (एतं गतासुमुपशेषे) तू जो इस मुर्दे के शोक में उस के पास पड़ी है (एहि) आ और (जीवलोकम् अभि) जीवती दुनियां में (तव) तेरे (हस्तग्राभस्य) हाथ पकड़ने वाले (दिधिषोः) धरौना करने वाले द्वितीय पतिकी (जनित्वम्, अभिसंबभूथ) स्त्री होनेको नियम स्वीकार कर॥

यह सम्पादक वे०प्र० का किया अर्थ समाप्त हुआ अब वेदों का गौरव बढ़ाने वाला निष्कलङ्क सर्वोत्कृष्ट वेदोंको कलंकसे बचाने के लिये वेदज्ञ विद्वानों का अनुभूत उपरोक्त मन्त्रों का सत्यार्थ नीचे लिखते हैं पाठक खूब ध्यान देकर पढ़ें।

अ०—(अमर्त्य) हे परमात्मन्! (इयं नारी) यह स्त्री (प्रेतम्) मृतपति के (अनु) पश्चात् (पुराणम्) सनातन (धर्मम्) धर्मका (पालयन्ती) पालन करती हुई (पतिलोकम्) पतिलोक [जिस लोक में मृत पति गया है] को

(वृणाना) स्वीकार करती हुई (त्वा) तेरे (उप) समीप (निपद्यते) नितरां शरणको प्राप्त होती है (तस्यै) इस स्त्री की (प्रजाम्) सन्तान (च) और (द्रविणम्) धन को (इह) इस संसार में (धेहि) पोषण कर, तस्याइति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ।

भावार्थ—देवरादि स्त्री के सम्बन्धी लोग परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि हे ईश्वर इस स्त्री का पति तो मर गया अब इसके धन सन्तान की इस संसारमें आपही रक्षा करें और स्त्रीका मुख्य कर्त्तव्य है कि पतिके मरे पीछे परमेश्वरके शरण प्राप्तहोकर सनातन (ब्रह्मचर्यचान्द्रायणादितपोनुष्ठान)धर्मको पालन करती हुई ही अपनी समस्त आयुको व्यतीत करे ॥

इसी ऋचा का ठीक २ आशय मनुस्मृति अ० ५ श्लोक १५७ । ५८ में देखिये—

कामन्तुक्षपयेद्देहं, पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौ प्रेतेपरस्यतु ॥
आसीताऽऽमरणात्क्षान्ता नियताब्रह्मचारिणी ।
योधर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥

भावार्थ—यदि अच्छे २ खान पान से कामोद्दीपन की संभावना हो तो भले ही पुष्प मूल फल खाकर तप करती हुई शरीर को सुखा देवे परन्तु पतिके मर जाने पर अन्य पुरुष का कभी नामभी न लेवे ॥ मरण पर्यन्त काम वेग को सहती हुई एकही जिन का पति होता ,ऐसी पतिव्रताओं के सर्वोत्तम पतिव्रता,धर्मको चाहती हुई नियम से ब्रह्मचारिणी होकर बैठे ॥

"उदीर्ष्वनार्यभि०"यह मन्त्र ऋग्वेद मण्ड० १० अ० २ । सू० १८ । मं० ८ । में ऐसा ही है जिस पर सब आस्तिकों के मा-

नवीय वेदज्ञ विद्वान् वेदोंके प्राचीन भाष्यकार श्रीसायणाचार्य जी ने भाष्य किया है सो नीचे लिखते हैं ॥

अथ सायणभाष्यम् ।

हे नारि मृतस्य पत्नि! जीवलोकं जीवानां पुत्रपौत्रादीनां लोकंस्थानं गृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व, अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ, ईरगतौ आदादिकः। गतासुमुपक्रान्तप्राणमेतं पतिमुपशेपे तस्य समीपे स्वपिषि तस्मात्त्वमेहि आगच्छ यस्मात्त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहं कुर्वतो दिधिषोर्गर्भस्य निधातुस्तवास्य पत्युः सम्बन्धादागतमिदं जनित्वं जायात्वमभिलक्ष्य संबभूथ संभूतास्यानुमरणनिश्चयमकार्षीस्तस्मादागच्छ। अत्रार्थे कल्पसूत्रमप्यनुसन्धेयम्। तामुत्थापयेद्देवरःपतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकमिति।

भाष्यमें लिखे कल्प सूत्रका पता यह है। आश्वलायनगृह्य अ० ४ कं० २ सू० १८। इस भाष्य और सूत्र का भावार्थ इस लिये नहीं लिखा कि सरल सीधा संस्कृत है इसको सब समझ सकते हैं फिर व्यर्थ कागज काला करना और समय लगाना क्या जरूरत है। परन्तु भाष्य और सूत्रका भावार्थ तात्पर्य एक ही है कि स्त्री अपने मृत पतिके पास श्मशान (मरघट) में शोकातुर पड़ी है उसको देवर वा शिष्य वा वृद्ध भृत्य उठाकर घर भेजें और कहें कि इस स्थानको छोड़ो और घरमें चलकर अपने बाल बच्चोंकी सम्भाल करो इत्यादि और लोक में अब भी यही चाल है कि सम्बन्धी लोग ऐसे ही स्त्री को समझाया करते हैं कि अब अपने घरमें बैठकर परमेश्वर का भजन करो और अपने वैधव्य दुःखको सहन करो ॥

इसी ऋचाका आशय मनु० अ० ५ । श्लोक १५६ में देखो—

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतोवामृतस्यवा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥

वेद के (हस्तग्राभस्य) के स्थानमें यहां (पाणिग्राहस्य) पद लिखा है अर्थ दोनोंका एक ही है। पहिली ऋचामें कहे (पति-लोकं वृणाना) के स्थानमें (पतिलोकमभीप्सन्ती) कहा है। यदि शूद्रादि नीच जाति की व्यभिचारिणी भी स्त्री हो और उनके यहां धरौना करनेकी चाल भी हो परन्तु पति मरते ही उसको कोई तुच्छ पुरुष भी ऐसा नहीं कह सकता कि इस मुर्देको तो जाने दे चूल्हे में, और तू आ इस जीवती दुनियां में जो तेरा हाथ पकड़े उसे ही खसम बनाले । तो भला वेद भगवान् द्विजोंकी कुलीन स्त्रियोंको ऐसी आज्ञा दे यह बात कोई भी मनुष्य मात्र मानेगा ? कदापि नहीं । और भी एक बात अति आश्चर्यकी सम्पादक वे० प्र० तु० रा० जी मन्त्रके भावार्थमें लिखते हैं कि—"यदि स्त्री ऐसा (दूसरा खसम) करती है तो यह सनातनधर्मका पालन है" धन्य महाराज! क्या आपका यह ही सनातनधर्म है? क्या इसीको सनातनधर्म कहते हैं, क्या आप सब आस्तिकोंके प्राणसे भी प्रिय शिरो-धार्य अति पवित्र वेदोंकी ऐसी ही इज्जत करते हैं ? फिर वेदानुयायी होनेका दावा भी रखते हैं ? आप ऐसे पवित्र गौड वंशीय ब्राह्मण कुलोत्पन्न विद्वान्को यह शोभा नहीं देता। सम्पादकजी अपने मनमें यह कहेंगे कि (दिधिषोः) पदका तो समाधान किया ही नहीं क्योंकि सं० जी की एक मात्र (दि-धिषोः) पदका तो आश्रय था ही अपने मनमें पहिले ही वि-चार लिया था कि—और तो कोई भी पद ऐसा मन्त्रमें नहीं है जो विधवाको सधवा कर सके यदि कुछ जोर लगावे तो यही लगावेगा इसके लिये सं० जी ने अमरकोश टीका सहित

लिखा परन्तु सं० जीने वेदोंके गौरव और शैली तथा महर्षियों की व्याख्याकी कुछ भी परवाह न की और यह भी नहीं विचारा कि जो अपने कर्मानुसार विधवा होगई उस को सधवा कोई नहीं कर सकता, एक अमरकोषका प्रमाण क्या यदि सहस्रों ऐसे प्रमाण हों तो भी उक्त व्याख्यामें दब जा सकते हैं और इस (दिधिषोः) का समाधान तो बहुत काल पहिले ही पूर्वाचार्य भाष्यकारोंने और कल्पसूत्रकार महर्षियोंने कर रक्खा है तब हम व्यर्थ ही क्यों परिश्रम करें और अपना अमूल्य समय खोवें क्योंकि (शब्दप्रमाणका वयम्) इस महाभाष्यके वचनानुसार सब वेदानुयायी सनातनधर्मावलम्बी आस्तिकोंको तो इस अर्थमें किंचित् भी संदेह नहीं है प्रत्युत श्रद्धापूर्वक शिरोधार्य मानते हैं और आशा है कि सं० जी को भी सन्तोष हो जायगा कदाचित् अब भी कुछ सन्देह करेंगे और इस विषयमें फिरभी अपनी लेखनीको तकलीफ देंगे तो मालूम हो जायगा कि सं० जी कहां तक वैदिक सिद्धान्तको जानते हैं और व्याकरणादि पढ़े हैं। अब सब आस्तिक मात्रको यह तो भली भांति विदित हो ही गया होगा कि उक्त दोनों ऋचाओं में विधवाको दूसरा पति करनेका लेशमात्र गन्ध भी नहीं निकलता और सम्पादकका किया अर्थ भाष्य कल्पसूत्र और वेदोंकी शैली से विरुद्ध होने से सब को उपेक्षणीय है॥ अब सम्पादक वे० प्र० जी वेदार्थ करने में कितनी योग्यता रखते हैं सो दिग्दर्शनमात्र दिखाते हैं पाठक गण देखें और अच्छी तरह विचारें॥

(१) प्रथम तो "विधवा को दूसरा पति विधान" यह शीर्षक ही निर्मूल है क्योंकि यह तो सब ही द्विज आस्तिकमात्र मानते हैं कि—द्विजों के जितने गृह्यसम्बन्धी वैदिक कर्म हैं उन सब का विधान कल्पसूत्रों में है तो जब तक

कोई ऐसा कल्पसूत्र सम्पादकजी न लिखें जिसमें यह लिखा हो कि इस मन्त्रसे विधवा दूसरा पति करे तब तक उक्त शीर्षक सर्वथा निर्मूल है तो (छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखाः) इस वचनानुसार सब ही लेख निर्मूल हुआ अर्थात् विधवाको दूसरा पति करना वेदादि सच्छास्त्रोंसे प्राप्त हो नहीं, जब नहीं पाया गया तो उक्त शीर्षक का सब ही लेख बालू की भीत के समान हुआ, तब ऐसे लेख की समालोचना जब तक सं० जीइसी पर कोई कल्पसूत्र न लिखें तब तक न करनी चाहिये थी परन्तु हमने यह सोचा कि—यह (विधवा को दूसरा पति करना) वैदिक कर्म ही नहीं तो सं० कल्पसूत्र कहां से लावेंगे ? क्योंकि कल्पसूत्रों में कहीं ऐसा विधान हैं ही नहीं तो फिर उक्त मन्त्रों के अनर्थ का सत्यार्थ लोगों को न दिखलाया जायगा तो भोले भाले द्विज लोग धोखे में न आ जायं इस लिये इसकी समालोचना करना आवश्यक समझा गया ॥

(२) परमेश्वर आज्ञा देता है कि:—यह मन्त्र के किस पदका अर्थ है ? ऐसा कोई पद मन्त्रमें है ही नहीं, सम्पादक ने विधवा को दूसरा खसम कराने के अभिप्राय से ही यह मन गढ़न्त की है ॥

(३) (अनु) इस में—यदि कहां से घुस पड़ा ? फिर एक अनु को दो जगह किस तरह लगाया एक तो प्रेतम् के पीछे अनु और दूसरा (अनुपालयन्ती) जिस पर भी अर्थ अशुद्ध, अशुद्धमें भी और अशुद्ध "करती है" की जगह करती हुई लिखना चाहिये था यह भी उक्त अभि० से ही मनगढ़न्त की है।

(४) (पतिलोकम्) श्वशुरालय अर्थ किया यह भी उक्त अभि० से ही मनगढ़न्त की है इस पद का सीधा अर्थ संस्कृतानभिज्ञ पुरुष भी जानते हैं कि जिस लोक में मृत पति

गया है वही पतिलोक कहा जाता है और यही अर्थ युक्त भी है क्योंकि साध्वी स्त्री उस लोक की इच्छा करती है जिस लोक में मृत पति गया है। न कि दूसरे किसी को खसम करने की ॥

(५) (वृणाना) फिर बरती हुई हो और=इस का सीधा अर्थ तो स्वीकार करती हुई इतना ही है तो–फिर हो, और–ये तीन शब्द कहां से घुस आये ? । यह भी उक्त अभि० से ही मनगढ़न्त की है ॥

(६) (निपद्यते) नितरां प्राप्त होती है तो, यह तो कहां से वर्ष गया यह भी उक्त अभि० से ही मनगढ़न्तकीहै॥

(७) (धेहि) धारण करा यह अर्थ विना णिच् प्रत्यय के किये कैसे हुआ ? यदि णिचप्रत्यय किया जाय तो (धेहि) रूप नहीं बन सकता इसका अर्थ तो धारण कर वा पोषण कर है यह भी उक्त अभि० से ही मनगढ़न्त की है ॥

और भी बहुत सी गड़ बड़ की है कहां तक लिखें। और अगले मन्त्र में भी इसी प्रकार बहुत अशुद्धियां की हैं एक (उदीर्ष्व) पदका अर्थ तो खाही गये परन्तु इस पर हम अभी कुछ नहीं लिखेंगे। क्योंकि इस की तो ऋषिकृत व्याख्या सब के सामने रक्खी ही है तो फिर हम क्यों अपना मत्था खपावें ॥

अब उपरोक्त मन्त्रों से भली भांति सिद्ध हो गया कि पति मरे पीछे विधवा स्त्री परमेश्वर के शरण प्राप्त होती हुई सनातन (ब्रह्मचर्यादितपोनुष्ठान) धर्म को पालन करती हुई ही अपना समस्त जीवन व्यतीत करे ॥

इस में स्मृति पुराण इतिहासादि के अनेक प्रमाण मिलते हैं परन्तु जब वेद में ही ऐसा प्रमाण मिलगया तब स्मृतियोंका प्रमाण लिखकर व्यर्थ लेख बढ़ाना और अपना समय लगाना बुद्धिमानों का काम नहीं, अब हम अपना

लेख समाप्त करते हैं और सम्पादक वेदप्रकाश पंडित तुलसी-राम जी स्वामीको सुहृद् भावसे उपालम्भ देते हैं कि आप आर्यसमाजी हो गये तो क्या हुआ? परन्तु आखिर तो सनातन धर्मावलम्बी आस्तिकों के सुपुत्र विद्वान् हैं इस लिये आप ऐसे विद्वान् पुरुष को पक्षपात वश वेद मन्त्रों का ऐसा अनर्थ न करना चाहिये या क्षमा करें॥ यह लेख पण्डितों की सम्मति लेकर लिखा गया है॥

आपका कृपाऽभिलाषी—

ता० २१ अप्रैल सन् १९०४ ई०

माधवप्रसाद वश्य खेमका
मु० चूरु राज श्रीबीकानेर

उक्त लेखमें पं० तु० रा० ने वेदके दो मन्त्रोंका यथाशक्ति घेर घार खेंच तानके साथ अर्थ करके अपनी शक्ति भर विधवा विवाहको सिद्ध करनेका पूरा उद्योग किया पर यहतो सभीलोग जानते हैं कि बालूमें से कभी किसी प्रबल उपायसे भी जैसे तेल नहीं निकलता वैसे ही वेदमें विधवा विवाह जैसे अधर्मका नाम निशान ही जब नहीं है तब वे पं० तु० रा० विचारे लाते ही कहां से। तोभी जैसे अविद्याके प्रभाव से सूर्यकी किरणोंमें जल प्रतीत होता अथवा जैसे स्थाणुमें पुरुष बुद्धि हो जाती है वैसे ही एक दिधिषू पद से तु० रा० ने वेद में विधवा विवाह होनेका स्वप्न देखा अर्थात् दिधिषू पदपर ऐसा बल दिया कि जानो इसी एक पदसे विधवा विवाह सिद्ध हो जायगा। परन्तु उस लेखमें भी कुछ ऐसा अंश नहीं था जिस पर कोई साक्षर पं० कुछ लिखने का साहस करता किन्तु भीतर २ उस लेखमें भी पोलपाल ही थी। (उदीर्ष्व-नार्य०) इस मन्त्रके (शेषे) पदका अर्थ स्वा० द० ने सन् ८४ के सत्यार्थप्र० पृ० ११६ में (बाकी पुरुषोंमें से) किया है और तु० रा० ने वे० प्र० भाग ८ पृ० ७४ में इसी पद (शेषे)का अर्थ (पड़ी है) किया है। पाठक सोचिये कितना अन्तर है और

इन दोनोंमें से किसका अर्थ मिथ्या है ? परस्पर विरुद्ध दो में एकही सत्य हो सकता है यदि तु० रा० अपने किये अर्थ को ठीक कहें मानेंगे तो स्वा० द० का अर्थ स्वयमेव मिथ्या सिद्ध हो जायगा । और यदि तु० रा० का अर्थ मिथ्या है तो उन का पक्ष विधवा विवाह का स्वयमेव गिर गया । दोनों दशाओंमें पुनर्विवाह इनके मतमें वेदसे सिद्ध होना वन्ध्यापुत्रके समान है । इस दशामें तु० रा० के लेखसे कुछ भी उनका पक्ष यद्यपि सिद्ध नहीं होता था तथापि सेठजीने यह सोचकर कि यदि उस लेखका कुछ उत्तर न छपावेंगे तो कदाचित् काम समझ अनेक लोग कुछ उलटा ही समझ बैठें इस लिये चूरूनिवासी सेठ माधवप्रसादजीने चूरूस्थ किन्हीं अपने मेली पं० की सन्मति लेकर पं० तु० रा० के उस लेखका खण्डन अच्छे प्रकार लिखकर छपाया । इस लेखको देखतेही पं० तु० रा०के होश उड़गये घबड़ा गये । खिसिया गये बहुत ही चिड़गये क्योंकि पं० तु० रा० ने अपने मनमें विचारा होगा कि यदि किसी पं०से हार भी जाते तो इतनी लज्जाकी बात नहीं थी परन्तु एक सीधे सादे वैश्यसे हार जाना बड़ी लज्जाकी बात है । इसमें अपनी प्रतिष्ठाकी बड़ी हानि समझते हुए भी लेख में तो कुछ अशुद्धि नहीं निकाल सके परन्तु (माधवप्रसाद उ-द्दण्ड उच्छृंखल बहक जाने वाले पक्षाभासमें रु० बरबाद क-रने वाले) इत्यादि निन्दनीय शब्दोंसे उनको याद किया है ।

वे० प्र० पृ० १२२ में तु० रा० लिखते हैं कि "आप यह तो बतावें कि क्या दिधिषु का अर्थ कुलटा व्यभिचारिणी आदि निन्दार्थ वाचक शब्दोंका सा है ? यदि है तो धर्मशास्त्र का प्रमाण दीजिये कि दिधिषु पापी वा पतित होती है । आप धर्मशास्त्रमें दिधिषु पापी पुरुष होता है, यह दिखादें तो हम भी मानलेंगे कि पुनर्विवाह अधर्म है," ॥

पाठक महाशय ? तु० रा० के ऊपर के लेखानुसार अब सहज में फैसला कर लीजिये कि बालू की भीत के समान तु० रा० अब कैसे पछाड़ खाके गिरते हैं सो आगे के लेख से प्रकट होगा ।

इस पर हम प्रथम तो दिधिषू शब्द का व्याकरणार्थ दिखाते हैं जिससे दिधिषू पापिनी स्त्री सिद्ध है । अमरकोश मनुष्यवर्ग श्लोक २२ रामाश्रमी टीका ।

पुनर्भूर्दिधिषूरूढाद्विस्तस्यादिधिषुः पतिः ।
सतुद्विजोऽग्रेदिधिषुः सैवयस्यकुटुम्बिनी ॥

पुनरिति पुनर्भवति संस्कृता (क्विप्) दधाति पापमिति । डुधाञ्धारणपोषणयोः । जु० । उ० । अ० । धिष्यते । धिषशब्दे । जु० प० से० । अन्दूदृम्भू० उ० १ । ९३ । इति साधुः । यद्वा दिधिं धैर्यं स्यति । षोऽन्तकर्मणि । दि० प० अ० । प्राग्वत् ॥

भावार्थः—जिस स्त्री का जिस किसी एक पुरुष के साथ विवाह हो चुका उसके मरजाने पर वा उस जीवितको छोड़के अन्य के साथ विवाह करले वह स्त्री पुनर्भूः और दिधिषू कहाती है । जिस ब्राह्मणादि के यहां वह स्त्री बैठती है । उस द्वितीय पतिका नाम दिधिषुः पति और अग्रेदिधिषुः पड़ते हैं । दिधि नाम धैर्य को नष्ट करने वाली वा पाप को धारण करने वाली स्त्री दिधिषू कहाती उस पापिनका पति बनने से पुरुष भी पापी होता है । धृति धर्म का लक्षण है धृति और धैर्य एकार्थ ही हैं तब धैर्य रूप धर्मको छोड़ने वा नष्ट करने वाली क्या पापिन नहीं हुई ? । क्या धर्म का त्याग करना पाप नहीं है ? । दिधिषू शब्द का यही अर्थ

स्वा० दयानन्दकृत व्याख्या सहित छपे उणादि १। ९३ में भी लिखा है। इससे भी दिधिषू पद का अर्थ धैर्य रूप धर्म का नाश करने वाली होने से पापिनी स्त्री हो गया। अब लीजिये धर्मशास्त्र का प्रमाण—

नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः
अन्यस्मिन्हिनियुञ्जाना धर्मंहन्युःसनातनम्॥म०९

अर्थः—द्विजाति नाम ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की विधवा स्त्रीका अपने पतिसे भिन्न किसी भी पुरुषके साथ नियोग नहीं करना चाहिये अन्य पुरुषसे विधवा का नियोग करने वाले सनातनधर्म के नाशक घातक होंगे। इस दशामें मनुमें कहा नियोग शूद्रोंके लिये चरितार्थ रहगया। इस मनुके प्रमाणसे नियोग चलाने तथा चाहने प्रचार करने वाले सभी लोग सनातनधर्म का हनन करने वाले पापी सिद्ध हो गये। दिधिषुः पति को मनु जी ने श्राद्ध में निमन्त्रण देने का निषेध किया है। जिससे उसका पापी होना सिद्ध होगया। और भी प्रमाण लीजिये। सर्वतन्त्र सिद्धान्तानुसार स्त्री पुरुष के संयोग के दो फल होते हैं—

रतिपुत्रफलानारी॥

रति और पुत्र दो प्रकार का फल स्त्री से होता है। अब यदि तु० रा० आदि सनाजी रति के लिये नियोग तथा विधवाविवाह रूप अधर्मका प्रचार करना चाहते हैं तब निम्न लिखित प्रमाण देखो—

भ्रातुर्मृतस्यभार्यायां योऽनुरज्येतकामतः।
धर्मेणापिनियुक्तायां सज्ञेयोदिधिषुःपतिः॥म०
३।१७३। नियुक्तौयौविधिंहित्वा वर्त्तेयातांतु-
कामतः॥ तावुभौपतितौस्यातां स्नुषागगुरुत-
ल्पगौ॥ म० ९। ६३

अर्थ.—मरे हुए भाईकी स्त्री में जो पुरुष कामासक्त हो· कर रति के लिये अनुराग से प्रवृत्त हो चाहे उस स्त्री के साथ विधिपूर्वक नियोग भी कर लिया हो तो भी वह पुरुष दि· धिषुः पति रूप निन्दित नाम धारी पापी है इसी से श्रा· द्धादि में सत्कार के योग्य नहीं है। तु० रा० के लिखे इस श्लोकार्थ से भी दिधिषुः पतिका पापी होना झलकता है। नियोग किये हुए दोनों स्त्री पुरुष यदि विधिको छोड़कर कामवश होके परस्पर मेल रक्खें संयोग किया करें। तो वे· दोनों पतित हो जाते हैं। और बड़ा भाई छोटी भौजाई से कामवश हो तो वह पुत्र वधूके साथ व्यभिचार करने का अपराधी है तथा छोटा भाई बड़ी भौजाई के साथ काम वश हो तो उस को गुरुपत्नी गमनका महापातक लगता है। अब बतलाइये कि विधवाके साथ कामपूर्वक सम्बन्ध करने वाले पुरुष पापी और महापापी सिद्ध हुए वा नहीं ?। जब कि आजकल सभी विधवा विवाहादि कामवश हो रहे हैं तो वे लोग धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार पतित पापी और महा पापी क्यों नहीं हुए ?। अब रहा दूसरा पक्ष कि आपत्काल में सन्तानोत्पत्ति मात्र के लिये नियोग वा विधवा विवाह करना चाहिये उसके विषय में धर्मशास्त्र की आज्ञा सुनो॥

पाणिग्राहस्यसाध्वीस्त्री जीवतोवामृतस्यवा ।
पतिलोकमभीप्सन्तीनाचरेत्किञ्चिदप्रियम्॥१॥
अपत्यलोभाद्यातुस्त्री भर्त्तारमतिवर्त्तते ।
सेहनिन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥२॥
नान्योत्पन्नाप्रजास्तीह नचाप्यन्यपरिग्रहे ।
नद्वितीयश्चसाध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते ॥३॥
व्यभिचारात्तुभर्त्तुःस्त्री लोकेप्राप्नोतिनिन्द्यताम्

शृगालयोनिंप्राप्नोतिपापरोगैश्चपीड्यते॥ ४ ॥
पतिंयानाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
साभर्त्तृलोकमाप्नोतिसद्भिःसाध्वीतिचोच्यते ५॥

अर्थः-जिस पुरुषने पाणिग्रहण किया है उस पतिके जीते जी वा मरजाने पर जन्मान्तरोंमें पति द्वारा सुख चाहती हुई साध्वी स्त्री उसका कुछ भी अप्रिय कदापि न करे। पुरुषको सबसे अधिक अप्रिय यही है कि उसकी स्त्री अन्य पुरुषके पास जावे। अन्य पुरुषसे मेल करनेवाली अब तक अनेक स्त्रियोंकी हत्या हो चुकी है इस से वह काम पतिका अप्रिय सिद्ध है यह बात प्रत्यात्म वेदनीय है हर एक मनुष्य स्वयं अपने मनमें विचारे कि मेरी स्त्री अन्य खसम करे तो क्या मुझको यह अच्छा लगेगा? अब ज्ञात होगा कि नीच से नीच पुरुष भी ऐसा न चाहेगा। जब यहां विद्यमान में यह पतिको अप्रिय है तो इसी से मरणान्तर भी अप्रिय सिद्ध है। यदि यह प्रिय होता तौ स्वा० द० की (अन्यमिच्छस्व-सुभगेपतिंमत्०) इस आज्ञानुसार सन्तानके अभावमें [पं० तु० रा० के भी कोई सन्तान नहीं है] पं० तु०रा० आदि कई भद्र पुरुषोंने अब तक अन्य पुरुषों द्वारा सन्तान उत्पन्न करा भी लिये होते। जब मनुजीने यह कहा है कि पतिके जीवित रहने वा मरने पर साध्वी स्त्री पतिका कुछ भी अप्रिय न करे तो सिद्ध हुआ कि जो पतिका अप्रिय करती है वह साध्वी नहीं किन्तु असाध्वी निकृष्ट निन्दित पापिन है। इस से निन्दित होना सिद्ध हो गया। और जो स्त्री सन्तानके लोभ से अपने पतिसे भिन्न अन्य पुरुष से मेल करती है वह संसारमें निन्दित होती और पतिके लोकसे भी च्युत होजाती है जन्मान्तरमें उसको पतिका सुख नहीं होता वार २ विधवा हो जाती है। दिधिषूस्त्री भी दो ही प्रयोजनोंसे अन्य द्वितीय

पुरुषसे मेल करती है सो दोनोंही प्रकारोंसे निन्दित और पाप भागिनी पतित होना सिद्ध है। यदि कोई कहे कि दिधिषू पुनर्भू द्वितीय पति करके सन्तान पैदा करेगी तो उन पौनर्भवादि सन्तानोंके श्राद्ध पिण्डदानादि कर्म करने से दिधिषू माताकी अच्छी गति हो जायगी। सो इस पर मनुजी कहते हैं कि विवाहित से भिन्न अन्य पुरुष द्वारा स्त्री ने उत्पन्न किये सन्तान उसके पुत्र नहीं हो सकते और न विवाहितसे अन्य स्त्री में उत्पन्न किये पुरुष के पुत्र होते हैं (क्योंकि पुत् नामक नरक से त्राण रक्षण करने वाला पुत्र कहाता है) सो ये सन्तान माता पिताकी नरकसे रक्षा ही नहीं कर सकते। क्योंकि मनुजीने स्वयमेव नवमाध्यायमें लिखा है कि—१८० । १८१ । १५८ । १६० । १६१ ॥

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितान् ॥
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥१॥
यएतेऽभिहिताःपुत्राःप्रसंगादन्यबीजजाः ॥
यस्यतेबीजतोजातास्तस्यतेनेतरस्यतु ॥ २ ॥
पुत्रान्द्वादशयानाह नृणांस्वायम्भुवोमनुः ॥
तेषांषड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥३॥
कानीनश्चसहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ॥
स्वयंदत्तश्चशौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ ४ ॥
यादृशंफलमाप्नोति कुप्लवैःसन्तरन्जलम् ॥
तादृशंफलमाप्नोति कुपुत्रैःसन्तरंस्तमः ॥ ५ ॥

अर्थ.—नियोगादिसे उत्पन्न हुए क्षेत्रज आदि ग्यारह सन्तानोंको श्राद्धादि कर्मों का लोप न होने किन्तु प्रचार बना रहनेके लिये पुत्रके प्रतिनिधि स्थानापन्न (कायम मुकाम) कहा है क्योंकि ये वास्तवमें असली पुत्र ही नहीं है। और

इसी कारण उनके श्राद्धादि कर्मसे माता पिताकी सद्गति भी नहीं हो सकती। तब कोई कहे कि फिर क्षेत्रजादि पुत्र किसके होंग? तब मनुजी कहते हैं कि जो इस दायभागके प्रसंगानुसार क्षेत्रजादि ११ पुत्र अन्यके वीजसे पैदा हुए हैं वे जिस २ के वीजसे पैदा हुए हैं उसी २ के पुत्र माने जावेंगे किन्तु दिधिषू स्त्री का वह पौनर्भव पुत्र नहीं माना जायगा स्वायंभुव मनुजीने जो मनुष्योंके बारह प्रकारके पुत्र कहे हैं उनमें छः बन्धु और कुछ २ दायभागी हैं पर पिछले छः कुटुम्बी और दायभागी (हकदार) नहीं हैं। कानीन, सहोढ़ क्रीत, पौनर्भव, स्वयं दत्त और शौद्र ये छः न कुटुम्बी और न दायभागी अर्थात् ये छहों कुपुत्र वास्तवमें जड़से ही कुपूत हैं।

जैसे पुरानी टूटी रखने वाली नौकापर चढ़के जलाशयमें तरता हुआ मनुष्य मझधारमें डूबता है वैसे ही इन छः कुपूतोंके किये पिण्डदानादिसे सद्गति चाहने वाला पुरुष संसार सागर में डूबता है। पाठक महाशय! भूल न जाइये इन्हीं डुबाने वाले छः सन्तानोंमें वे पौनर्भव महाशय भी ऊपर आचुके हैं कि जिनको लु० रा० दिधिषू पुनर्भू द्वारा उत्पन्न कराना चाहते हैं। सारांश यह कि दिधिषू यदि सन्तान के लिये दूसरा खसम करती है तो वह मझधार में डूबेगी इससे भी दिधिषू का महापापिन होना सिद्ध है॥

तथा साध्वी सती श्रेष्ठ स्त्रियोंके लिये दूसरे पतिका कहीं भी विधान नहीं है। दूसरा पति करने वाली ही दिधिषू कहाती है वह अर्थापत्तिसे ही असाध्वी असती निकृष्ट निन्दित व्यभिचारिणी पापिन सिद्ध हो गयी। विवाहित से भिन्न पुरुषके साथ संग करने वाली स्त्री व्यभिचारिणी कहाती इसीसे वह लोकमें निन्दित होती जन्मान्तरमें शृगालयोनिको पाती और पाप रोगोंसे पीड़ित होती है। क्या इससे दिधिषू नाम द्वितीय पुरुषसे संग करने वाली स्त्री निन्दित

पापिन स्पष्ट ही नहीं सिद्ध हो गयी ? । और जो मन वाणी शरीर से नियमबद्ध रहती हुई द्वितीय पतिको मन वाणी कर्म से नहीं चाहती वह जन्मान्तर में पतिसे सुख पाती और अच्छे लोग उसे साध्वी कहते हैं इसकी अर्थापत्तिसे जो ऐसी नहीं वह दिधिषू पुनर्भू असाध्वी निन्दित है ॥

अब हमारे पाठक महाशय स्मरण करें कि तु० रा० ने वे० प्र० पृष्ठ १२२ में लिखा है कि " मनुने दिधिषूकी निन्दा वा पापिन होना कहीं नहीं लिखा, यदि ऐसा प्रमाण दिखादें तो हम भी मानलें कि पुनर्विवाह अधर्म है,, इसके अनुसार मनुस्मृतिके प्रमाणोंसे हमने ऊपरके लेखमें निम्न बातें सिद्ध करदी हैं ॥

१—व्याकरणसे दिधिषू पदका अर्थ पापको धारण करने वाली वा धैर्यरूप धर्मको छोड़नेसे पापिन सिद्ध हो गया, व्याकरणसे दिधिषूका अर्थ उत्तम साध्वी होना कदापि सिद्ध नहीं हो सकता ॥

२—मनुके प्रमाणानुसार द्विजाति लोग यदि एक विवाहित पतिसे भिन्न के साथ स्त्रीका नियोग कराते हैं तो सनातनधर्मके नाशक हैं इससे पुनर्भूका द्वितीय खसम करना भी सनातनधर्मका घातकरूप पाप हुआ ॥

३—दिधिषुः पतिका पापी होना श्राद्धादिमें सत्कारसे वंचित रखना दिधिषू पापिनके साथ मेल होना ही इसका मूल कारण है इससे भी दिधिषूका निकृष्टार्थ सिद्ध हो गया। यदि वह दिधिषू कामवश होकर अपने विवाहितसे भिन्न अन्यपुरुषके साथ मेल करती है तो महापातकिन सिद्ध हुई कि जैसे कामवश हो नियोगादि करनेवाले पापी और पतित हो जाते हैं ॥

४—अन्य पुरुषसे मेल करनेपर स्त्रीको पतिका सुख जन्मान्तरमें न होना दिखानेसे अन्य पति करनेवाली दिधिषू का अपराधिनी होना सिद्ध है ॥

५-सन्तानके लोभसे अन्य पतिके करनेपर स्त्रीका निन्दित होना कहनेसे दिधिषू अपराधिन पापिन् स्पष्ट ही सिद्ध हो गयी ॥

६-ग्यारह प्रकारके पुत्र वास्तवमें पुत्र नहीं उनसे नियोगादि द्वारा उत्पन्न करनेवाले मा बापोंकी सद्गति न होना दिखानेसे नियोग वा दिधिषूका द्वितीय पति करना बुरे काम सिद्ध हो गये। क्योंकि जब विवाह शास्त्रानुकूल अच्छा काम है तब उससे हुए सन्तान भी तारने वाले होते हैं ॥

७-पौनर्भवका अदायभागी और भाई वन्धु न होना दिखाने से वह पतित सिद्ध हुआ इससे भी उसकी माता दिधिषू निकृष्ट सिद्ध हो गयी ॥

८-पौनर्भवको मझधारमें डुवाने वाला कुपूत बतलाना भी उसकी माताके दुष्कर्मको सिद्ध करता है। इससे भी दिधिषू पापिनी सिद्ध हुई ॥

९-सती कुलस्त्रीको द्वितीय पतिका किसी दशा में भी उपदेश न होना दिखानेसे दिधिषूका कुलटा असती असाध्वी होना स्पष्ट है ॥

१०-द्वितीय पति करनेवालीकी यहां निन्दा, जन्मान्तर में शृगाल योनिकी प्राप्ति तथा पाप रोगोंसे पीड़ित होना दिखाने से भी दिधिषूका द्वितीय खसम करनेसे महापापिनी होना स्पष्टरूपसे सिद्ध है ॥

११-मन वाणी और शरीरसे अन्य पुरुषकी इच्छा न रखनेवाली ही स्त्री सती साध्वी और जन्मान्तरमें पतिसे सुख पानेवाली है इससे द्वितीय खसम करनेवाली दिधिषू आदिका असाध्वी असती निन्दित होना जन्मान्तर में पतिसुख न पाना सभी वे रोक टोक सिद्ध हो गया ॥

इत्यादि प्रकार दिधिषूका पापिनी होना सिद्ध होजाने पर लु० रा० को अपने लिखनेका कुछभी लिहाज हो तो "हम

भी मानलेंगे कि पुनर्विवाह अधर्म है ,, इस प्रतिज्ञाके अनुसार अब आप पुनर्विवाहको अधर्म अवश्य मानलेवें कि मनुजीने दिधिषूकी निन्दा और पापिनी होना स्पष्ट लिखा है । आगे तु० रा० पृ० १२२ में लिखते हैं कि परपुरुष तो वही है जिससे विधिवत् विवाह वा नियोग न हुआ हो,, उत्तर= ठीक है सत्य तो बड़ा प्रबल है रोकते २ भी कलम से लिख ही तो गया कि विधिवत् विवाह जिससे न हुआ हो वही परपुरुष है । सो विवाह तो एक ही वार एक पुरुषके साथ होता है (सकृत्कन्याप्रदीयते) जैसे काठकी हण्डी एक ही वार चूल्हेपर चढ़ती है वैसे ही कन्या एकहीवार दी जाती है । वेदविधिसे जिसके साथ विवाह होगया वही एक पति है उससे भिन्न अन्य सभी परपुरुष हैं ॥

विधायक ग्रंथ सब कर्मोंके कल्पसूत्र गृह्य श्रौत नामक हैं जिनमें सब कर्त्तव्य विवाहादि कामोंकी रीति और मंत्र विनियोग लिखा गया है यदि नियोग तथा विधवाविवाह भी कर्त्तव्य होता तो सूत्रग्रन्थोंमें उनके लिये अवश्य कुछ विधान होता तु० रा० ही बतलावें कि विधवा विवाहके लिये वेद में कौन २ मन्त्र हैं जिनसे विधवाका विवाह कराया जावे । अभिप्राय यह कि विधवाविवाह और नियोगके लिये शास्त्रों में कोई विधान ही नहीं इस कारण उनका विधिवत् होना कहा ही नहीं जा सकता इसी कारण मनुजीने द्विजोंकेलिये नियोगका खण्डन (नान्यस्मिन् विधवा०) श्लोक द्वारा कर दिया है ॥

और दिधिषू वा पुनर्भू वह स्त्री है जो प्रथम एककी होकर फिर दूसरेकी स्त्री होजावे तो अब सोचिये कि कुलटा व्यभिचारिणी और दिधिषूमें क्या फरक रहा ? व्यभिचारिणी भी तो दूसरे की स्त्री हो जाती है । यदि तु० रा० कहें कि स्त्री किसीकी नहीं हो अनेक पुरुषों से व्यभिचार करने वाली व्यभिचारिणी कहाती है तब तुम्हारे मतमें तो वह

भी ठीक है क्योंकि तुम ग्यारह तक पुरुषों का करना दोष नहीं मानते। वास्तव में सोचो तो व्यभिचारिणी भी पुनर्भू के समान अन्य पुरुषसे समागम ही करती है किन्तु किसी का खून नहीं करती न आकाश में उड़ जाती है। अपने विवाहित पतिसे भिन्न दूसरे किसी पुरुषकी ओर कामवश होके वा सन्तान के लोभसे निगाह करे वही व्यभिचारिणी कही जायगी तो कुलटा व्यभिचारिणी पुनर्भू सब पर्याय वाचक शब्द होगये॥

अब तु० रा० को विधवा विवाह विषयमें निकल भागने का कोई अवसर शेष नहीं रहा एक दिधिषू पदके बलपर कुछ नाचते कूदते थे सो बल उनका ऊपर लिखे प्रमाणों से सर्वथा टूटगया।

आगे तु० रा० पृ० १३३ में "मर्त्यका अमर्त्य पदच्छेद करके अर्थ का अनर्थ करडाला,, लिखते हैं। उत्तर-अमर्त्य पदको कोई पण्डित सौ जन्म धारण करने पर भी व्याकरणादिसे अशुद्ध नहीं ठहरा सकता तो वह अनर्थ कैसे होगया? (सर्ववेदायत्पदमामनन्ति०) प्रमाणके अनुसार सभी वेद एक ईश्वरके प्रतिपादक हैं तब ईश्वरसे प्रार्थना सम्बन्धी अर्थ को अनर्थ बतलाते हो और साध्वी सती स्त्रियोंको व्यभिचारिणी करने सम्बन्धी घोर अनर्थ को अच्छा अर्थ ठहराना चाहते हो धन्य है? तु० रा० जी धन्य??

नं० १। २-सायण भाष्यसे पदच्छेद न मिला तो किसी की हानि ही क्या हुई। और अमर्त्य पदच्छेद न करके मर्त्य ही किया जाय तब तु० रा० का पक्ष ही क्या सिद्ध होजाय गा? कुछ भी नहीं तब ऐसी बात पर झगड़ेका प्रयोजन तु० रा० का यही है कि ऐसे विचारसे मुख्य बात इधर उधर टलजाय तो हमारी पोल न खुले सेठजीके छपाये अर्थका आशय सायण भाष्यसे मिलता है तब विरुद्ध कुछ नहीं है॥

३ नं० का उत्तर—अब तक तु० रा० जी एक ही दृष्टि से सबको देखते थे क्या उसमें भी तो कुछ बाधा नहीं पड़ने लगी जो माधव प्र० जी के छपाये (इह) पदके अर्थको ही स्वयं भी स्वीकार करते हुए कहते हैं कि हमारे (इह) पदके इस लोक परके अर्थ पर कुछ ध्यान नहीं दिया । सो आगे २ दवाई कराइये ।

नं० ४—अथर्वकी सभाष्य पु० सेठजीके पास नहीं थी इस से अथर्वके मंत्रका सायण भाष्य न लिखकर ऋग्वेदका लिखा इसमें नीतिका काम सेठ जैसे लोगोंके पास क्या था ? हां नीतिके कर्त्ता तो प्रधान शुक्राचार्य जी हैं जिनकी शुक्रनीति नाम पुस्तक भी बन चुकी है उनके अनुयायी आसुरी सम्प्रदायका तो यह काम ही है कि वे धर्मके शुद्ध सरलमार्ग का परित्याग कर पग २ में नीति नाम चालबाजी चालाकी का अनुसरण किया करते हैं । परन्तु ऐसे लेख सर्वथा व्यर्थ हैं ॥

नं० ५—सेठजी को अभी तक यह नहीं ज्ञात था कि सायण भाष्यके संस्कृत को भी समझने योग्य तु० रा० आ० को बोध नहीं है पर अब ज्ञात हो गया कि बोध नहीं है इससे आगे भाषा भी लिख दिया करेंगे । सेठजी अब तक तु० रा० को भी पं० विद्वान् समझते थे ॥

नं० ६—दिधिषोः पदका अर्थ सायणाचार्यने (गर्भस्यनिधातुः) किया और सेठजीके छपाये अर्थमें धारक वा पोषक लिखा गया तो इन दोनों में परस्पर विरोध वा दोषही क्या है ? । दिधिषोः पदसे सायणाचार्य और सेठजी दोनोंके अर्थ में वही मृतविवाहित पति स्पष्टतया लिया गया है तब मुख्यवाच्यार्थमें कुछ अन्तर नहीं पड़ा । रास्ता चलते कोई किसी का हाथ पकड़ले ऐसा अनर्थ जब सायणाचार्यने भी नहीं किया तब सायणका नाम लेकर कुछ न कुछ लिखनेका मतलब यही है कि अपने कागज पूरे करो । सेठजी तो सायणभाष्यको

मानते ही हैं पर तु० रा० ठहर २ कर सायणाचार्यका शरण लेते हैं और शंकित हो २ के फिर २ भाग जाते हैं । सो जो सायणाचार्यकी शरणमें ठीक २ डट जावें तो विरोध विवाद ही कुछ न रहै क्योंकि सेठजी तो सायणाचार्यके अर्थको मानते ही हैं ।

नं० । ८—वरण स्वीकार दोनों एकार्थ हैं तस्याः अर्थ करनेमें कोई दोष नहीं तु० रा० को ४ पङ्क्ति लेख बढ़ाके अपना पत्र पूरा करना इष्ट था ।

नं० ९—सेठजीके पक्षको तो वेद तथा धर्मशास्त्रानुकूल होने से सदा ही पुष्टि है वह पक्ष ही अटल है परन्तु उदीर्ष्व० पदका अर्थ छोड़नेसे तु० रा० के पाण्डित्यकी परीक्षा हो गई कि उदीर्ष्वका अर्थ नहीं आता । दिधिषोः पद अब विवादास्पद नहीं रहा । अब दिधिषु पदका ऊपर लिखा फैसला युक्ति प्रमाण सहित देखकर तु० रा० मृतप्राय हो जायंगे । तु०रा०को केवल इसी एक पदके आधार पर हठ दुराग्रह था सो अब सर्वथा टूट गया । अब निराश्रय हो गये । परन्तु मिथ्या मन्तव्य तु० रा० के बाप दादोंकी मौरूसी मिल्कियत नहीं थी जिसके समूल खण्डित हो जानेका शोक तु० रा० को दबावेगा । तु० रा० समझदार हैं उन्होंने (उदीर्ष्व०) मंत्र के (दिधिषोः०) पदका अर्थ वे०प्र० पृ० १३० में "धरौना करनेवाले द्वितीय पति,, लिखा है सो यह धरौना रूप काम अहीर काछी कहार धोबी आदि शूद्र जातियोंमें अब भी चलता है । जिस स्त्रीका पति मरजाता है वह चाहे तो अब भी अपने बालबच्चों सहित अन्य पुरुषके घरमें बैठ जाती है तथा बिरादरीके लोगोंको भोजन दे देते हैं अन्य कुछ भी शास्त्रोक्त विधान इसमें नहीं होता इस धरौनेको शूद्रों में होना सभी ठीक मानते हैं सो यदि कभी पछाड़ खाई तब तु० रा० कह देंगे कि हमने तो धरौना लिखा था सो ठीक ही था । क्योंकि तु० रा० भी जानते हैं कि यह मिथ्या पक्ष

रूप वालू की भीत अब कैसी ही थोपथाप करो खड़ी नहीं रह सकती । अन्तमें चिरस्थायी सनातन सत्य पक्षका आश्रय लेना ही पड़ेगा ॥

मं० १०–(देवरः पतिस्थानीयः) इन पदोंका अर्थ गार्ग्य नारायण कृत वृत्तिमें देखिये जो आश्वलायन गृह्य सूत्रके भाष्य-कार हैं इस प्रकार किया है कि—

अनेन ज्ञायते पतिकर्तृकंपुंसवनादिकर्म पत्यभावेदेवरः कुर्यादिति ॥

इसका अर्थ यह है कि पत्नी गर्भवती हो और उसी अ-वसरमें पति मर जावे तो पुंसवनादि कर्म-पतिका स्थानापन्न होकर देवर करे । मनुजी ने अ० २ में लिखा है कि (ज्या-यस्यांचस्वसर्यपि०) जेठी भगिनी वहनको माताके तुल्य माने तु० रा० के मतानुसार क्या यहां पिता दुहिताको भी अपनी पत्नी मानले ? । ऐसे २ अनर्थों से ही तो धर्मका घात होता है । किसी अज्ञात स्त्री को कोई पुरुष अपनी माता, कहता वा मानता है परन्तु उसका अभिप्राय वहां यह नहीं है कि तू मेरे बापकी जोरू है । बड़ी भौजाईको देवर माताके तुल्य माने यह धर्मशास्त्रोंका सनातन सिद्धान्त चला आता है ॥

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्यासवर्णाऽहन्यहन्यपि॥मनु०॥
रामंदशरथंविद्धि मांविद्धिजनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवींविद्धि गच्छतातयथासुखम् ॥

भावार्थ–मनुजी कहते हैं कि बड़े भाईकी पत्नीके [जो स-वर्णा हो] नित्य २ माताके तुल्य पग छूने चाहिये । तथा वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि–जब भगवान् रामजीके साथ वनमें जानेकी आज्ञा मांगनेको लक्ष्मणजी माताके पास गये तब माता सुमित्राजीने कहा कि बेटा ! रामजीको पिता दशरथके तुल्य जानो तथा मेरे तुल्य जानकी जी को माता जानो और वनको अयोध्या जानते हो तो भले ही यथेष्ट

चले जाओ। हाय कलि! जो बड़ी भौजाई मातृवत् मानी जाती थी उसके साथ तु० रा० आदि समाजी आज देवरको व्यभिचार करानेके लिये कटिबद्ध हो रहे हैं। और निरुक्त का नाम लेना महा भूल है। मूल निरुक्तमें वह पाठ कहीं भी नहीं है, नोटमें होनेसे प्रामाणिक नहीं, देखो कलकत्तेके सामश्रमीका छपाया निरुक्त॥

तु० रा० लिखते हैं कि पतिके अभावमें देवर आफिशि-येटिंग नाम क़ायममुक़ाम पति है। वाह! जी वाह!! अब तो तु० रा० अंग्रेजी उर्दूमें भी पास हो गये न ?। पर आफिशि-येटिंग जिन लोगोंकी भाषाका शब्द है उनमें भी पति के विदेश जाने पर देवर क़ायममुकाम पति नहीं बनता। क्या विदेश जानेके समय आ० समाजी लोग आफिशियेटिंग पति अपने घरोंमें देवरको बना जाते हैं ?। जब (सकृत्कन्या प्रदीयते (पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः) इत्यादि मनु० के प्रमाणोंसे पुनर्विवाहका तथा उसमें मन्त्र विनियोग का स्पष्ट खण्डन हो गया तब यदि अपने पक्षको सिद्ध कर सकनेकी कुछ भी दम हो तो अपने (प्रथम विवाह विषयक गृह्यसूत्र ही द्वितीय विवाह विषयक हो जाते हैं) लेखानुसार किसी गृह्यसूत्र में दिखा देवें जहां लिखा हो कि पुनर्विवाह भी इन्हीं मन्त्रोंसे इसी विधानसे करना चाहिये। यदि ऐसा प्रमाण नहीं मिलता तो कपोलकल्पित निर्मूल तुम्हारा कथन मनुके प्रमाणसे खण्डित हो ही चुका है॥

इस वेदमन्त्रार्थप्रकरणमें जो सेठ माधवप्रसाद तथा पं० तु० रा० का शास्त्रार्थ दिखाया गया और उसमें मन्वादि के प्रमाणों पर जो कुछ व्यवस्था दिखायी गयी है वह सब प्र-संग प्राप्त आगया है वास्तवमें उक्त शास्त्रार्थका असली सारांश यही है कि वेद मंत्रोंके किन्हीं भी पदोंसे किञ्चिन्मात्र भी नियोग वा पुनर्विवाह सिद्ध नहीं होता। यह बात आ०समाजी लोगोंको भी ज्ञात हो चुकी है। पं०तु०रा०ने एक दिधिषू पदसे द्वितीय

पति हो सकने की बात वेदसे निकालनेकी चेष्टा की थी सो सायण भाष्य पूर्व मीमांसादर्शन (परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्) और स्वा० दयानन्दके मन्तव्यसे जब यह सिद्ध हो चुका है कि वेदके पद वाक्योंका यौगिकार्थ लेना ही उचित है और (नैगमरूढिभवं हि सुसाधु) इस महाभाष्यकारके कथनके अनुसार भी वेदके शब्द रूढ़ि नहीं होते यह सिद्ध है। विशेष कर आर्यसमाजका मत भी वेदमें यौगिकार्थ करनेका है उस यौगिकार्थके होनेपर दिधिषू शब्दसे पुनर्विवाहका नाम मात्र वा गंधमात्र भी वेदसे नहीं निकलता। जब तु० रा०ने देखा कि यौगिकार्थ से हमारा कुछ काम नहीं चलता तब अपने मन्तव्य से विरुद्ध रूढि लेनेकी चेष्टा की है। सारांश यही है कि वेदके किसी एकभी पदसे नियोग वा पुनर्विवाह सिद्ध नहीं हुआ॥

अब रहा कुछ न कुछ कहते लिखते रहना सो तो राज दण्डका भय हुए विना अपने २ वेदविरुद्ध मिथ्या मतोंको सत्य ठहरानेका उद्योग प्रायः सभी दुराग्रही मतवादी करते ही चले आते हैं कोई मुख नहीं बन्द कर सकता ॥

यदि राजाज्ञा होजाय तो अवश्य हठ छोड़ने पड़े। (अदेवृघ्नि०) मंत्रमें एक (एधि) पद आया है उसका अर्थ स्वा० दयानन्दने सत्यार्थप्रकाश समु० ४ में (प्राप्त होके) किया है सो सत्य बात तो यही है कि व्याकरणका इतना भी बोध स्वा०द०को नहीं था कि (एधि) क्रिया किस धातु की है? इतना बोध होता तो ऐसा अनर्थ कदापि नहीं करते ॥

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् । ऋ०१०। १०

मंत्रके इस टुकड़े पर स्वा० दयानंदजीने सत्यार्थप्र० समु० ४ में लिखा है कि "जब पति सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ होवे तब अपनी स्त्रीको आज्ञा देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्यकी इच्छा करने हारी स्त्री ! तू (मत्) मुझसे (अन्यम्) दूसरे पतिकी (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्तिकी आशा मत करे" सो स्वा०द०का यह अर्थ बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि स्वा० द० ने यहां पूरा मंत्र नहीं लिखा इसलिये हम यहां पूरा २ मंत्र लिखकर सीधा अक्षरार्थ किये देते हैं जिससे भ्रम मिट जायगा

आघाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृ-णवन्नजामि। उपवर्बृहि वृषभाय बाहु-मन्यमि-च्छस्व सुभगे पतिं मत् ऋ० १०। १०। १०।

निरुक्तकार और सायणाचार्यादि सबकी सम्मत्यनुसार इस मंत्रका सीधा २ अर्थ यह है कि एक साथ गर्भसे पैदा होने वाले दो भाई बहिन यमयमी कहाते हैं। इन यमयमीका संवाद इस सूक्तमें है। यमी बहिनने अपने भाई यमसे कहा कि तुम मेरे साथ विवाह करलो तिसपर यम कहता है कि आगे कभी ऐसे युग नाम समय आवेंगे कि जब स्त्रियोंको न करने योग्य अनुचित काम भाईके साथ बहिनके विवाह होंगे। इससे हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा वाली तू मुझसे भिन्न अन्य पुरुष को पति बनानेकी इच्छा कर मैं तेरा पति हो नहीं सकता अर्थात् वेदके इसी सूक्तमें यह भी लिखा है कि-

पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ॥

बहिनके साथ विवाह करना पाप कर्म है। धर्मशास्त्रों में भगिनीके साथ विवाह करनेका निषेध इन्ही वेद मंत्रोंसे लिया है। अर्थात् यमयमीके संवाद पूर्वक भाई बहिन के विवाहका निषेध उक्त मंत्रमें किया गया है। इसका विशेष व्याख्यान जिन लोगोंको देखना हो वे हमारे किये यमयमी सूक्तके भाष्यमें देखें। आ० समाजी पण्डितोंने भी मान लिया है कि (अन्यमिच्छस्व०) मंत्रमें नियोग पुनर्विवाहादि कुछ भी नहीं है, इसी कारण शास्त्रार्थादिमें कभी इस मंत्रका प्रमाण नहीं देते। तु० रा० ने भी इसी कारण सेठ माधवप्रसाद के पूछने पर इस मन्त्रका प्रमाण नहीं दिया था क्योंकि इसमें नियोगादिकी कुछ भी बात नहीं है। स्वा० द० ने संसारके मनुष्योंको वेदका नाम लेकर धोखा दिया है। अब इस वेद मंत्रार्थ प्रकरण को यहीं समाप्त किया जाता है। यदि किसी अन्य वेद मंत्रको कोई महाशय कहीं कभी प्रमाणमें पेश करेंगे और ज्ञात होगा तो अगले संस्करणमें उस मंत्रका भी अर्थ इस पुस्तकमें सम्मिलित किया जायगा॥

इति वेदमन्त्रार्थप्रकरणं समाप्तम्॥

अथ स्मृतिप्रमाणव्यवस्थाप्रकरणम् ॥

पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि स्मृति शब्दके दो अर्थ हैं एक पारिभाषिक, द्वितीय यौगिक, उनमें पारिभाषिक यह है कि (धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः) मनु आदि महर्षियोंके बनाये वीस धर्मशास्त्र स्मृति कहाते हैं। जिनके नाम याज्ञवल्क्यस्मृतिके आरम्भमें [मन्वत्रिविष्णुहारीत०] इत्यादि लिखे हैं। द्वितीय सामान्य यौगिक स्मृति वेदसे भिन्न सभी ग्रंथ हैं। वेदाङ्ग दर्शन इतिहास पुराणादि सभी का नाम स्मृति है। इस प्रकरणमें स्मृति पदका यही द्वितीयार्थ मानना चाहिये। तदनुसार स्मृति पुराणादिके सभी प्रमाणोंका विचार इस प्रकरणमें किया जायगा। प्रथम स्वामी दयानन्दजी ने द्वितीय सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४ में जो मनुके प्रमाण लिखे हैं उन पर यहां थोड़ा सा विचार दिखाते हैं—

यास्त्रीत्वक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापिवा।
पौनर्भवेनभर्त्रासा पुनःसंस्कारमर्हति ॥ मनु०

जिस स्त्री वा पुरुषका पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग अर्थात् अक्षतयोनिस्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह न होना चाहिये ॥

उत्तर—पाठक महाशय! स्वा० द० की भाषा देखिये कैसी ऊटपटांग है क्या पुरुषका भी पाणिग्रहण संस्कार होता है?। वेदमें लिखा है (गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं०) पति कहे कि हे स्त्रि! मैं तेरा हाथ सौभाग्यवती होनेके लिये ग्रहण करता हूं यदि पुरुषका भी पाणिग्रहण संस्कार होगा तो उसके लिये क्या और मन्त्र बनाया जायगा? और क्या पुरुष भी गर्भवान् होगा? क्या यह समझ पूर्वक बात है? अर्थात् कदापि नहीं (संयोग अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री०) यहां क्या

संयोग शब्द का अर्थ अक्षतयोनि स्त्री है ? । फिर (पुनर्विवाह न होना चाहिये) यह लिखना भी अपने मतसे विरुद्ध असमञ्जस है । वास्तव में मनु का श्लोक भी अशुद्ध लिखा और अर्थ भी अशुद्ध असमंजस किया है अब देखिये शुद्ध पाठ और अर्थ हम दिखाते हैं ।

स्वा० द० ने जो अशुद्ध श्लोक लिखा है उस से पहिला भी एक श्लोक हम लिखते हैं—मनु० अ० ९

याप्त्यावापरित्यक्ता विधवावास्वयेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा सपौनर्भवउच्यते ॥१७५॥
साचेदक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापिवा ।
पौनर्भवेनभर्त्रासा पुनःसंस्कारमर्हति ॥१७६॥

भावार्थः—जिस स्त्री को पति ने त्याग दिया हो वा जो स्वयं पति को त्याग के विधवा बन गयी हो और वह फिर किसी अन्य पुरुष से संयोग करके जिस सन्तान को पैदा करे वह पौनर्भव कहाता है वही स्त्री यदि अक्षतयोनि हो अर्थात् पहिले पति से उसका संयोग न हुआ हो तो पुनर्भू [नाम पहिले एक के साथ विवाहित होकर फिर अन्य पुरुष से संयोग कर उत्पन्न किये] स्त्री के पौनर्भव पुत्र पुरुष के साथ उसका विवाह हो जाना चाहिये । अभिप्राय यह निकला कि मनु का यह राजधर्म था कि यदि किसी स्त्री को पति त्याग दे वा जो स्वयं पति को छोड़दे ऐसी स्त्रीका अक्षतयोनि होना सिद्ध हो जाय तो उस का पौनर्भव [पुनर्भू दिधिषूके पुत्र] पुरुष के साथ विवाह कर दिया जाय । सो ठीक है परन्तु ऊपर सेठ माधवप्रसाद और पं० तु० रा०के शास्त्रार्थमें सिद्ध हो चुका है कि दिधिषू और पुनर्भू एक प्रकार की पापिनी वा व्यभिचारिणी है और उसका पति तथा उसका पुत्र भी दोष युक्त अवश्य है । प्रथम विवाहित स्त्री पुरुष तथा उनके सन्तान के तुल्य निर्दोष नहीं हो सकते ॥

हां इतना हम भी मान लेंगे कि छिपे २ व्यभिचार करने और गर्भपातादि करने वालोंसे वे किसी प्रकार कम दोषी अवश्य हैं। तथापि सद्गृहस्थोंमें वे लोग नहीं गिने जावेंगे ॥

सत्यार्थप्र० द्वितीयावृत्ति समु० ४ पृ० ११७ में लिखा है कि—

तामनेनविधानेन निजोविन्देतदेवरः । मनु०

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तो पतिका निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है ॥

उत्तर--स्वा० दयानन्दने मनु का आधा श्लोक लिखा उस का आधा भाग छिपा लिया वा चुरा लिया है। द्वितीय जो अर्थ लिखा वह भी अशुद्ध है [जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय इतना अर्थ उक्त श्लोकके किसी भी पद से नहीं निकलता। इसीसे कोई भी समाजी नहीं बता सकता कि यह मनुके किन पदोंका अर्थ है ? । अब हम मनु का पूरा श्लोक और ठीक २ उसका अर्थ नीचे लिखते हैं

मनु० अ०९

यस्याम्रियेतकन्याया वाचासत्येकृतेपतिः ।
तामनेनविधानेन निजो विन्देतदेवरः ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—वाग्दान नाम सगाई हो जाने पर यदि कन्या का पति मर जावे तो निज देवरके विद्यमान होने पर उसी के साथ उस कन्याका विवाह होना चाहिये। जैसे सभी काम मन वाणी और शरीर तीनोंसे होते हैं वैसे विवाह भी तीनों प्रकारसे होता है। अमुक वरके साथ अमुक कन्या का विवाह करेंगे ऐसा मनमें विचारना मानस विवाह है। वाणीसे कहना कि (पिता तुभ्यं प्रदास्यति) सगाई वा टीका चढ़ानेके समय कन्याका भाई वा अन्य कोई वाणीसे वर के समक्ष प्रतिज्ञा करे कि कन्याका पिता तुमको कन्या

देगा यही वाग्दान है। तीसरा शरीरसे दान यही है कि कन्यादानके समय वरके हाथमें कन्याका हाथ धरके संकल्प करना, तदनन्तर पाणिग्रहण लाजा होम अग्निपरिक्रमा और सप्तपदी पर शारीर विवाहकी पूर्त्ति मानी जाती है। इस वाग्दानके हो जाने पर मनवाणी दो प्रकारसे विवाह हो जानेके कारण उसे अर्द्ध विवाह मानकर उसको गौणपति मान लिया है इसी लिये कन्या पर पतिका कुछ हक हो जानेसे देवरके साथ विवाह कहा। यदि देवर न हो तो उसी कुलमें अन्य वर के साथ उस कन्याका विवाह होना उचित है। आज कल पूरा सप्तपदीपर्यन्त विवाह विधि हो चुकनेसे पहिले वाग्दान हो जाने पर यही माना जाता है कि इस कन्याका कुछ भी विवाह नहीं हुआ। इस प्रकार उक्त श्लोक से विधवा विवाह वा नियोग कुछ भी नहीं निकलता। स्वा० दयानन्दने पण्डितोंकी आंखोंमें धूलि फेंकते हुए उक्त श्लोक से अपना मनमाना नियोग प्रवरित करनेकी चेष्टा की सो श्रुतिस्मृति दोनोंसे नितान्त विरुद्ध और कपोल कल्पित है॥

मनु अ० ९। ५९। इत्यादि चार श्लोकोंसे मनु जी ने राजा वेनकी आज्ञानुसार चले नियोगका विधान अन्यों के मतानुसार दिखाया है। उन चार श्लोकोंमें से स्वा० दयानन्द ने सत्यार्थ प्र० समु० ४ पृ० ११८ में एक ५९ वां श्लोक लिखा है उससे प्रकरणानुसार ठीक २ अर्थ सब लोगोंकी समझमें नहीं आवेगा इस लिये उस प्रकरणके सब बारहों श्लोक यहां लिखकर हम प्रकरणानुसार मनुका सत्य २ अर्थ लिखे देते हैं जिससे फिर संदेह न रहेगा॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्यभार्या या गुरुपत्न्यनुजस्यसा।
यवीयसस्तुयाभार्या स्नुषाज्येष्ठस्यसास्मृता॥५७॥
ज्येष्ठोयवीयसोभार्य्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।

पतितौभवतोगत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥५८॥
देवराद्वासपिण्डाद्वा स्त्रियासम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताऽधिगन्तव्या संतानस्यपरिक्षये ॥५९॥
विधवायांनियुक्तस्तु घृताक्तोवाग्यतोनिशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं नद्वितीयंकथञ्चन ॥ ६० ॥
द्वितीयमेकेप्रजनं मन्यन्तेस्त्रीषुतद्विदः।
अनिर्वृत्तंनियोगार्थं पश्यन्तोधर्मतस्तयोः ॥६१॥
विधवायांनियोगार्थे निर्वृत्तेतुयथाविधि।
गुरुवच्चस्नुषावच्च वर्त्तेयातांपरस्परम् ॥ ६२ ॥
नियुक्तौयौविधिंहित्वा वर्त्तेयातांतुकामतः।
तावुभौपतितौस्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥६३॥
नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः
अन्यस्मिन्हिनियुञ्जाना धर्मंहन्युःसनातनम्॥६४॥
नोद्वाहिकेषुमन्त्रेषु नियोगःकीर्त्यतेक्वचित्।
नविवाहविधावुक्तं विधवावेदनंपुनः॥ ६५ ॥
अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिः पशुधर्मोविगर्हितः।
मनुष्याणामपिप्रोक्तो वेनेराज्यंप्रशासति ॥६६॥
समहीमखिलांभुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानांसंकरंचक्रे कामोपहतचेतनः ॥६७॥
ततःप्रभृतियोमोहात्प्रमीतपतिकांस्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तंविगर्हन्तिसाधवः ॥६८॥

भावार्थ-ज्येष्ठ भाईकी जो पत्नी होती है वह छोटे भाई को गुरु पत्नीके तुल्य पूज्य मानने योग्य है। और छोटे भाई

की पुत्र वधूके तुल्य है ॥ ५७ ॥ ज्येष्ठ भाई छोटी भौजाई से और छोटा भाई बड़ी भौजाईसे आपत्काल न होने पर नियोग करके भी संयोग करें तो दोनों पतित हो जाते हैं। आपत्काल वही है कि जब कुल परम्परासे चला राजवंश नष्ट होता हो। इसी कारण वैसा आपत्काल न होने से नियोगको आमतौरसे प्रचार करनेकी चेष्टा करने वाले लोग पतित माने जावेंगे ॥ ५८ ॥ सन्तानके अभाव में खास देवर वा पति की छः पीढ़ी में जो पतिका भाई हो उससे विधि पूर्वक नियोग करके विधवा स्त्री अभीष्ट सन्तानको उत्पन्न करलेवे ॥ ५९ ॥ नियोगका विधान यह है कि रात्रिमें पुरुष अपने शरीर में घी लगाके मौन होकर विधवासे संयोग कर के एक सन्तान पैदा करे द्वितीय नहीं ॥ ६०॥ अन्य कोई आचार्य एक सन्तानसे धर्मानुकूल नियोगके प्रयोजनकी सिद्धि न देखते हुए विधवा स्त्रियोंमें द्वितीय सन्तान पैदा करना भी मानते हैं ॥ ६१ ॥ एक वा द्वितीय सन्तानके लिये गर्भ हो जाने पर नियोगका समय पूरा हो जाता है उस समय गुरु पत्नी और पुत्रवधूके तुल्य विधवाके साथ वे दोनों पतिके छोटे बड़े भाई वर्त्ताव करें ॥ ६२ ॥ नियोग करने वाले स्त्री पुरुष ऊपर कहे नियमको तोड़के कामवश हो कर आगे वरावर परस्पर संयोग करते रहें तो वे दोनों पुत्रवधू और गुरु पत्नीसे गमन करने वालोंके तुल्य पतित हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

पाठकगण ध्यान रक्खें कि ६०।६१।६२ तीन श्लोकोंमें जिसका विधान है यही नियोग राजा वेनका चलाया है ॥६४ ६८॥ पांच श्लोकों द्वारा इसी नियोगका खण्डन मनुजीने किया है। क्या नियोगका हल्ला करने वालोंने आजतक कहीं एक दो भी नियोग ऐसा कराया है कि जो एक वा दो सन्तान का गर्भ हो जानेपर वह छूट गया हो और वह नियोगी पुरुष मौन होकर शरीरमें घी लगाके नियोगिनीके समीप गया हो तत्काल ही गर्भ होकर आगे उनका स्त्री पुरुष व्यवहार न

रहा हो यदि ऐसा नियोग हुआ हो तो बताना चाहिये। जब कि ऐसा नियोग आज तक नहीं हुआ तो पूर्वोक्त श्लोक ६३ में कहे अनुसार नियोगका नाम लेकर कामासक्ति बढ़ाने वाले सभी लोग पतित माने जावेंगे। अर्थात् यद्यपि राजा वेनका चलाया नियोग मनुजीकी रायसे खण्डित हो चुका है तथापि यदि दुर्जनतोषन्यायसे उसे अखण्डित ही मानलिया जाय तो भी राजा वेनके मतानुसार भी नियोग चलाने वाले पतित हो जाते हैं। अर्थात् वेनका चलाया नियोग अब कोई नहीं कर सकता। इस लिये ६०। ६१। ६२। श्लोक खण्डित न होने पर भी समाजियोंके इष्ट साधक नहीं हैं॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज लोगोंको विवाहितासे भिन्न अन्य किसी भी पुरुषके साथ विधवा वा सधवा का नियोग नहीं करना चाहिये क्योंकि वैसा करनेसे पातिव्रतरूप सनातनधर्मका नाश होगा॥ ६४॥ कोई लोग ६४ श्लोक में पढ़े (अन्यस्मिन्) इस अन्य पदका (देवरसपिण्डातिरिक्ते) देवर और सपिण्डसे भिन्न के साथ नियोग न करे ऐसा अर्थ करते हैं। सो यह उनकी प्रकरण विरुद्ध खैंचतान है क्योंकि ऐसा अर्थ होनेकी दशामें देवर तथा सपिण्डके साथ होने वाला नियोग सनातनधर्म ठहरेगा सो ठीक नहीं [मनु० अ० ९। ५३ अतः परम्प्रवक्ष्यामि योषितांधर्ममापदि] इस मनुके प्रमाणानुसार यह वेनप्रोक्त नियोग भी आपत्कालीन धर्म है और सनातनधर्मका विपक्षी आपद्धर्म कहाता है। नियोग और विधवा विवाहको सभी समाजी लोग भी आपद्धर्म कहते मानते हैं। मानलो कि यदि बालविधवा न हों तो समाजियोंके विचारानुसार भी नियोग वा विधवा विवाहकी आवश्यकता नहीं रह सकती इस कारण एकदेशी आपत्कालमें ही उपयुक्त होने वाला नियोग सनातनधर्म नहीं कहा जायगा। सब काल में

उपयोगी सर्वदेशीका ही नाम सनातनधर्म रहेगा। इस कारण अन्य पदका देवरसपिण्डातिरिक्त अर्थ करना उन लोगों की बड़ी भूल है। तथा ६४ आदि श्लोकों की ठीक संगति नहीं लगेगी इसलिये श्लोकका हमारा ही अर्थ ठीक सत्य है।

विवाहके मन्त्रमें नियोग कहीं भी नहीं कहा इससे वेदविरुद्ध है [विधवेव देवरम्] मन्त्र वाक्यका ठीक २ सत्य अर्थ हम इसी पु० के पृ० ३। ४ में दिखा चुके हैं। गृह्यसूत्रों में कहीं विवाहविधिमें भी विधवाका नियोगादि नहीं कहा ॥६५॥ इसी कारण विद्वान् लोगों ने इस नियोग को पशुधर्म के तुल्य निन्दित माना है। यह नियोगरूप पशुधर्म राजा वेनके समयसे मनुष्योंमें भी प्रचरित होगया है उससे पहिले मनुष्योंमें नियोगका प्रचार नहीं था ॥६५॥ वह राजा वेन सब भूमण्डल भरका चक्रवर्ती राजा होता हुआ कामी होनेसे नियोग चला कर उसने वर्णसंकरोंका प्रचार किया है। इससे नियोग का प्रचार करने वाले अब भी वर्णसंकरता फैलाने वाले सिद्ध हुए ॥ ६७ ॥ तभी राजा वेन के समय से लेकर विधवा स्त्री को सन्तानोत्पत्तिके लिये जो कोई पुरुष विवाहितासे भिन्न पुरुष के साथ नियोग करता है उस को सज्जन लोग बुरा कहते हैं ॥६८॥ मनुजी ने अ० ५ के अन्तमें स्त्रियों का धर्म कहा है वहां भी साफ २ लिखदिया है कि स्त्री अपने धर्म की रक्षा करना चाहे तो सन्तानके लोभसे अन्य पुरुषके साथ नियोगादि न करे। क्योंकि अन्य पुरुषके वीर्य से हुए सन्तान उस स्त्रीके नहीं होते किन्तु जिसके वीजसे हुए हैं उसीके वे होते हैं इससे नियोग करना श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध अवश्य है॥

कोई लोग ६५-६८ तक चार श्लोकोंको इसलिये प्रक्षिप्त नाम पीछे से किसी के मिलाये कहते लिखते हैं कि मनुजी पहिले हुए और राजा वेन पीछे हुए इस कारण राजा वेनका इतिहास मनुस्मृतिमें आ नहीं सकता। इसका संक्षेपसे समा-

धान यही है कि जब ऋगादि वेदमें अनेक ऋषियों तथा राजाओंका इतिहास विद्यमान है तो भी वेद उन सबसे पीछे बना नहीं माना जाता वैसे ही वेद की छायारूप स्मृति में भी मन्वादिकी सर्वज्ञतासे आगे होने वाले इतिहास भूतवत् लिखे जा सकते हैं । यह समाधान मनुस्मृतिके राजा वेनसे पहिले बननेकी दशामें है । पर वास्तवमें शोचा जाय तो यह अभी साध्यकोटिमें है कि मनुस्मृति कब बनी ? । आज तक किसी समाजीने किन्हीं प्रमाणोंसे यह सिद्ध नहीं किया कि मनुस्मृति कब बनी कितने वर्ष मास और दिन मनुस्मृति बनने के होगये हैं ॥

ब्यूलर साहब एक अंगरेज हो गये हैं उन्होंने मनुस्मृति पर अङ्गरेजीमें टीका किया है उसमें लिखा है कि ईसामसीह की उत्पत्तिसे छः सौ वर्ष पहिले मनुस्मृति बनी है । इस के अनुसार मनुस्मृतिको बने १९१० और ६०० सब २५१० दोहजार पांच सौ दश ही वर्ष होते हैं । परन्तु यह ब्यूलर साहबकी राय ठीक नहीं भी हो तो भी वर्त्तमान मनुस्मृति स्वायम्भुव मनुजीके समयकी बनी नहीं है । अनुमान होता है कि मनुजी ने पहिले मानवधर्म सूत्रोंमें यही धर्मोपदेश संक्षेपसे किया था उस में बहुत काल बाद राजा वेन के हो जाने पर भृगु जी ने वा उनके भी किसी शिष्यने इस पद्यात्मक दशामें मनुस्मृतिको संकलित किया । मूल उपदेश मनुजी का ही रहा इसी कारण मानवधर्मशास्त्र नाम रक्खा गया है । जब कि राजा वेनसे पीछे बनने पर भी कोई दोष नहीं आता और वेनसे पहिले बननेका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता तो निर्विकल्प ही मनुस्मृति को राजा वेनसे पीछे बनी मान लेना चाहिये । इस दशा में मनु अ० ९ । ६५ से ६८ तक श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहना बड़ी भूल है ॥

आगे सत्यार्थप्र० समुल्लास ४ पृ० ११९ में स्वा० द० ने लिखा है कि—

प्रोषितोधर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौनरः समाः।
विद्यार्थंषड्यशोऽर्थंवा कामार्थंत्रींस्तुवत्सरान्॥

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्मके लिये परदेश गया हो तो आठ वर्ष विद्या और कीर्तिके लिये गया हो तो छः वर्ष और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे ॥ १ ॥

यह ऊपर का लेख स्वा० दयानन्दका है। अब इसका समाधान सुनिये। उक्त श्लोक मनुस्मृति अ० ९ का ७६ वां है उसमें यह कहीं नहीं लिखा कि [बाट देखके पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूटजावे] इतनी भाषा मनुके किसी भी पदवाक्यसे नहीं निकलती किन्तु स्वामी दयानन्दने मनभाना वेदशास्त्र विरुद्ध कल्पित विचार लिख दिया है। श्लोकमें आये (प्रतीक्ष्यः) पदका अर्थ है कि प्रतीक्षा करनी चाहिये। बाट देखके ऐसा अर्थ करना अशुद्ध है। पतिके विदेश जाने पर ठीक समय तक न आवे तो नियोगकर सन्तान पैदा करना और विवाहित पति के फिर आजाने पर नियोगी को छोड़ देने की बात लिखना बहुत भद्दी वा लज्जाकी बात है। समाजीलोग भी इसको अच्छा नहीं समझते इसी कारण पति लोगोंके विलायत जाने पर उनकी स्त्रियां नियोग नहीं करलेती हैं। इस पर टीकाकारादिकी राय देखिये—

सर्वज्ञनारायणः—तदूर्ध्वं पत्युः संनिकर्षमेव गच्छेत्। कुल्लूकः—ऊर्ध्वं पतिसन्निधिं गच्छेत्। राघवानन्दः—तदूर्ध्वं पतिसमीपं गच्छेत्। तथा वसिष्ठस्मृतिः। अ० १७ सू० ६७। प्रोषितपत्नी पञ्च वर्षाण्युपासीतोर्ध्वं पञ्चभ्यो वर्षेभ्यो भर्तृसकाशं गच्छेत् ॥

भावार्थ—मनुके टीकाकारोंकी सम्मति यह है कि आठ आदि वर्षों तक विदेश गये पतिकी वाट देखकर पति न आवे तो वह स्त्री पतिके समीप चली जावे। और जब महर्षि वसिष्ठ जी का एक अत्यन्त पुष्ट प्रमाण विद्यमान है कि विदेश गये पुरुष की पत्नी पांच वर्ष तक उसकी वाट देखकर पांच वर्ष वाद पतिके समीप चली जावे। तब ऐसी दशामें यदि कोई टीकाकार यह भी लिख देता कि (उतने २ वर्षों वाट देखकर नियोग कर ले) तो भी महर्षिके प्रमाणके सामने वह टीकाकार की राय मानने योग्य नहीं हो सकती। इस लिये स्वा० द० का लेख यहां भी धर्मशास्त्रसे विरुद्ध होने के कारण त्याज्य है। धर्मशास्त्रके प्रमाणों पर स्वा० द० का इतना ही लेख था सो समाप्त हो गया॥

अब नियोग निर्णय नामक पु० जो एक गुप्त अर्थात् नाम छिपे हुए आ० समाजीने बनाया है उस पर संक्षेप से विचार लिखेंगे। इस नियोग निर्णय पुस्तकके पहिले ८ पृष्ठोंमें केवल इतना अभिप्राय दिखाया है कि "पराशर स्मृति ही कलियुग में विशेष मान्य है और उसमें लिखा है कि (नष्टेमृते०) पहिले पतिके खोजाने वा मरजाने आदि आठ हालतोंमें अन्य पतिके साथ उस विधवा स्त्री का विवाह कर देना चाहिये। जो सनातनधर्मी यह कहते हैं कि (अपतौ) ऐसा पदच्छेद करके वाग्दान हो जाने पर पति सदृशकी पांच हालतोंमें अन्य के साथ विवाह करे सो ठीक नहीं है क्योंकि यदि स्मृतिकार का ऐसा अभिप्राय होता तो "पञ्चस्वापत्सुनारीणाम्" के स्थान में "पञ्चस्वापत्सुकन्यानाम्" ऐसा कहते। ऐसा न कहनेसे पराशरका यही आशय है कि सप्तपदी तक विवाह होजानेपर भी पांच हालतोंमें अन्य पुरुषके साथ विवाह कर दिया जावे"॥

अब इसका समाधान संक्षेपसे सुनिये। पाठक महाशय! ऊपरका लेख कैसा पोच वा असार है आप ध्यान देंगे तो

प्रतीत हो जायगा। पराशर स्मृति कलियुग में सनातन धर्मियोंको मन्तव्य है न कि तुमको, जो लोग पराशर स्मृतिको प्रामाणिक मानते हैं उनके मत में नियोग वा पुनर्विवाह मान्य ही नहीं और जिन तुम लोगोंके मतमें नियोग वा पुनर्विवाह मन्तव्य है उन तुम्हारे यहां पराशर स्मृति मान्य नहीं है तब देखिये पराशरका प्रमाण देना कैसा विरुद्ध है। तथा सत्यार्थ प्र० समुल्लास ४ पृ० १२२ में (नष्टेमृते०) श्लोक को न माननेके लिये स्वा० द०ने खासकर लिखा है कि "ऐसे २ श्लोकों को नहीं मानना चाहिये" जब स्वा० द० उक्त श्लोक को मानने का खण्डन कर चुके तो गुप्त समाजीने उक्त श्लोक क्यों मान लिया ? और नहीं माना तो पुनर्विवाहकी सिद्धि में क्यों लिखा ? ॥

वास्तवमें नियोग निर्णय पु० लिखने छपाने वाला गुप्त समाजी मनुष्य कोई मूर्ख है संस्कृत में उसको कुछ बोध भी नहीं है क्योंकि—

नष्टेमृतेप्रव्रजिते क्लीवेचपतितेऽपतौ।
पञ्चस्वापत्सुनारीणां पतिरन्योविधीयते॥

इस श्लोकमें सनातनधर्मी विद्वान् लोग अपतौ क्यों निकालते हैं ? सो समाजी ने नहीं दिखाया और न अपतौका कुछ समाधान किया सो देखिये—

पतिः समास एव॥ अ० १।४।८॥

इस पाणिनि सूत्रका अभिप्राय यह है कि इससे पहिले सातवें सूत्रसे पति शब्दकी घिसंज्ञा सिद्ध ही है तब यह सूत्र व्यर्थ होकर नियमार्थ होता है कि पति शब्द समास में ही घिसंज्ञक हो अन्यत्र नहीं और (अच्च घेः) इत्यादि सूत्र घिसंज्ञा होने पर ही लग सकते हैं अन्यथा नहीं। अपतौ निकालने पर नञ् समासमें घिसंज्ञा हो जायगी तब अपतौ

रूप बन सकता है। और केवल पतौ माना जाय तो व्याकरण से अशुद्ध है। महर्षि पराशर का श्लोक व्याकरणसे अशुद्ध नहीं होना चाहिये। अपतौ निकालने पर व्याकरण से भी पराशरका वचन शुद्ध हो जाता है और मनुस्मृति के भी अनुकूल हो जायगा क्योंकि वाग्दान हो जाने पर तो अन्य पुरुषके साथ मनुके अभिप्रायसे भी नियोग वा विवाह हो सकता है। परन्तु सप्तपदी पर्यन्त विवाह हो जानेपर फिर अन्यके साथ विवाह नहीं हो सकता यही मन्वादि सबका आशय है॥

यदि गुप्त समाजीको यह खबर होती कि पतौ यह शब्द व्याकरणसे अशुद्ध है इस कारण सनातनी विद्वान् लोग वहां अपतौ ऐसा निकालते हैं तो संभव है कि पतौको शुद्ध करने के लिये गु० समाजी कुछ चेष्टा करता। सो जब पतौ को शुद्ध ठहरानेकी कुछ भी चेष्टा नहीं की इससे ज्ञात होता है कि गु० समाजीको शुद्ध अशुद्ध की कुछ भी खबर नहीं है वा यों कहो कि इतना बोध ही नहीं है कि जिससे शुद्ध अशुद्ध जानलेता जो मनुष्य पति शब्दके सप्तम्येक वचनका रूप तक भी नहीं जानता वही समाजियोंका धर्मोपदेशक है यह कैसा आश्चर्य है ?। द्वितीय नियोग निर्णय पुस्तक के पृ० ४ । ५ में प्रसज्जक शब्द बार बार अशुद्ध लिखा है, वहां गु० समाजी को यह ज्ञात नहीं था कि यह शुद्ध शब्द कैसा है नहीं तो प्रसज्ज्य तथा प्रसज्ज्यक लिखता। जिसको इतनी भी खबर नहीं कि प्रसज्जक शब्द शुद्ध नहीं है किन्तु अशुद्ध है तो वह ऐसा मनुष्य वेदादिसे नियोग का निर्णय करे तो यह आश्चर्य नहीं और क्या है ?॥

गुप्त समाजी ने (नष्टे मृते०) श्लोक पर एक बात यह भी लिखी है कि यदि वाग्दान के बाद नष्ट वा मृतादि होजाने पर पराशरको अन्य पति करने की आज्ञा देना इष्ट होता तो वे (नारीणांपतिरन्योविधीयते) यहां (कन्यानां पतिरन्यो विधीयते) ऐसा लिखते, ऐसा न कहनेसे सिद्ध होता

है कि जबतक सप्तपदी पर्यन्त विवाह नहीं होता तबतक कन्या संज्ञा रहती है और नरकी स्त्री होने से नारी कहाती है॥

इसका समाधान यह है कि यहां भी गु०समाजीका कहना मिथ्या है क्योंकि-स्त्री योषित् अबला, योषा नारी इत्यादि सामान्यार्थ वाचक शब्द हैं। अर्थात् विवाहिता व कुमारी कन्या इत्यादि सब प्रकारकी स्त्रियोंके उक्त नाम हैं-स्त्रीणां धर्मान्निबोधत अ० ५। १४६ में मनुजीने सब कुमारी आदिको स्त्री शब्दसे लिया है। तथा नारीणां दूषणानिषट् अ० ९। १३ में भी मनुजी ने सर्वमान्य स्त्रियोंका ग्रहण किया है। अमर कोश का० २। व० ६ में भी नारी सामान्य स्त्रीमात्रका नाम लिखा है। इस कारण नारी शब्दसे विवाहिताको समझना यह गु० समाजीका मिथ्या ज्ञान है और नरकी स्त्री होनेसे नारी कहाती है नारी शब्दका यह अर्थ भी व्याकरण से विरुद्ध है ऐसे अर्थ नाम पुंयोगमें प्रथम ङीप् प्रत्यय ही नहीं होता किन्तु ङीष् होता है इस से ङीप् लिखना अशुद्ध है। और नर शब्दसे ङीष् हो तो भी नारी नहीं बन सकता किन्तु नरी शब्द बनेगा। जिस समाजीको कुछ भी खबर नहीं वही वेदादि शास्त्रों से नियोगका निर्णय लिखनेको तत्पर हुआ यह कैसा अन्धेर है?॥

अब यहां विशेषकर गुप्त समाजीकृत नियोग निर्णय पुस्तक पर विचार लिखेंगे। राजा धृतराष्ट्र पांडु और विदुरकी उत्पत्तिके लिये जो विचार महाभारत आदि पर्व अ० १०३ में सत्यवती और भीष्मका संवाद गु० समाजीने लिखा है। वहां सत्यवतीने भीष्मजीसे कहा है कि राजवंश नष्ट होता है इस लिये तुम चित्राङ्गद विचित्र वीर्यकी पत्नियोंमें सन्तान पैदा करो तो कुलवंश चले। अ० १०३ के ११ श्लोक तक लिखकर गु० समाजी ने पृ० १२ में अभिप्राय निकाला है. कि इस प्रसंग में भीष्मको धर्मात्मा शास्त्र ज्ञाता और श्रुतिवेत्ता वेद वेदाङ्ग विज्ञानी वर्णन करनेका यही आशय है कि इन सब ग्रन्थों

में नियोग करना लिखा है" सो यह अभिप्राय निकालना मिथ्या है क्योंकि सत्यवतीका अभिप्राय वहां यह है कि तुम सब कुछ वेद शास्त्रोंका तत्त्व जानते हो, यदि राजवंश की रक्षा के लिये सन्तानोत्पन्न करना वेदानुकूल है तो उसका उद्योग करो । वेद शास्त्रोंमें नियोग कहीं भी नहीं लिखा सो यह इसी पुस्तकसे सम्यक् सिद्ध होजायगा । इस भीष्म सत्यवती के संवाद में नियोग शब्द कहीं भी नहीं आया तो भी गु० समाजी ने व्यर्थ ही नियोगको घसीटा है। महाभारत आदि पर्व अ० १०३ के २५ । २६ । दो श्लोकों को गु० समाजी ने लिखा है, उनके भावार्थ में क्षात्र पदको उड़ा दिया है और अपनी अज्ञानता से तन्त्र शब्द का गुप्त अर्थ लिख दिया है, तन्त्र का गुप्तार्थ किसी भी प्रमाण से नहीं हो सकता । अनुमान होता है कि अर्थ लिखते समय मन्त्र शब्द पर ध्यान रहा होगा । अब देखिये उक्त दो श्लोक ये हैं—

शन्तनोरपिसन्तानं यथास्यादक्षयंभुवि ।
तन्तेधर्म्मंप्रवक्ष्यामि क्षात्रंराज्ञि ! सनातनम्॥२५॥
श्रुत्वातंप्रतिपद्यस्व प्राज्ञैःसहपुरोहितैः ।
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्यच ॥२६॥

भावार्थः—हे राज्ञि ! जिस प्रकार शन्तनु के वंश में सन्तान हों और वंशच्छेद न हो उस प्रकारके क्षत्रियोंके सनातनधर्म को मैं कहूंगा, तुम उस आपत्काल के क्षात्रधर्म को सुनकर और लोकमर्यादा को देखकर निश्चय करो अर्थात् आपत्कालके धर्म का तत्त्व जानने वाले विद्वान् पुरोहित महात्मा सिद्ध ब्राह्मणों से आपत्काल में क्षत्रियोंकी स्त्रियां सन्तान रूप वरदान मांग लेवें । इसका अभिप्राय यह है कि क्षत्रिय राजा ही वर्णाश्रम धर्म की रक्षा किया करते हैं जब वेदोक्त धर्मके रक्षक राजा नहीं रहते तभी धर्मका नाश

हो जाता और सब ब्राह्मणादि नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं । इस लिये वेदमार्ग प्रवर्त्तक क्षत्रिय राजाओंका अभाव न हो ऐसा उद्योग करना चाहिये यही राय भीष्म जी की थी इसी का नाम सनातन धर्म उस प्रसंग में कहा गया है, वहां नियोग की बात कुछ भी नहीं है ॥

इसी उक्त अभिप्राय को पुष्ट करने के लिये भीष्मजीने यहां कहा है कि जब परशुराम जी ने इक्कीसवार पृथिवी को क्षत्रियों से हीन कर दिया अर्थात् जब भूमण्डल पर क्षत्रियों का अभाव हो गया तब ऋषि मुनि सिद्ध ब्राह्मणोंने क्षत्रियों द्वारा धर्मकी रक्षा होने के लिये अपने २ संकल्प मात्र वरदान से क्षत्रिय वीरांगनाओं में फिर से क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है । मनु जी ने जो कहा है [ब्रह्मतः क्षत्रम्] ब्रह्मसे क्षत्र हुआ है उसका अभिप्राय यही है कि सिद्ध ऋषि मुनि ब्राह्मणोंके संकल्प मात्र से क्षत्रिय पैदा हो सकते हैं किन्तु विषय भोग लम्पट ब्राह्मण किसी ब्राह्मण क्षत्रियादि पुरुष रत्न को कदापि उत्पन्न नहीं कर सकते ।

पाणिग्राहस्यतनयइतिवेदेषुनिश्चिलम् ।

इसका अभिप्राय यह है कि सिद्ध महात्मा लोग वरदान मात्र आशीर्वाद वा संकल्प से जिन स्त्रियोंमें सन्तानों को पैदा करते हैं वे सन्तान उन स्त्रियों के पतियों के होते हैं यही वेदका सिद्धान्त है क्योंकि संकल्प ही मुख्य है । अर्थात् यह कथन मानस संकल्प से होने वाले सन्तानोंके लिये दिखाया है और मैथुनी सृष्टि के लिये मनुजी ने अ० ९ में कहा है कि—

यस्यतेबीजतोजातास्तस्यतेनेतरस्यतु ॥१८१॥

अन्य की विवाहिता स्त्री में अन्य जिस पुरुषके वीर्यसे सन्तान होते हैं वे सन्तान उसी के होते हैं किन्तु जिस की

विवाहिता स्त्री में होते हैं उसके नहीं होते । इस कारण परशुरामने जब सब क्षत्रियोंको मारडाला था तब नियोगकी कल्पना करना मिथ्या है क्योंकि तब २ सिद्ध ब्राह्मणों के सत्य संकल्प मात्रसे फिर २ प्रतापी क्षत्रिय राजा पैदा हो चुके हैं । यदि कोई समाजी नियोग द्वारा अब एक भी प्रतापी क्षत्रियको पैदा करादे तो हम भी मान सकते हैं कि पहिले नियोग से क्षत्रिय हो गये होंगे । अस्तु—

इससे आगे गु० समाजी ने महर्षि दीर्घतमा की कथा लिखी है कि "दीर्घतमा जन्मान्ध ऋषि थे प्रद्वेषी नामक स्त्री से उनका विवाह हुआ उस से गौतमादि पुत्र हुए, एक समय किसी कारण स्त्री पुत्र दीर्घतमा पर क्रुद्ध हो गये, ऋषि ने ऐसी अनीति देखकर मर्यादा नियत की कि अबसे लेकर जीवन पर्यन्त स्त्री का एक ही पति होगा, पतिके मरने पर वा जीवित दशा में जो स्त्री अन्य को पति करेगी वह पतित अवश्य हो जायगी इत्यादि सुनकर स्त्री पुत्रों ने दीर्घतमा को गंगा में वहा दिया । तब राजा बलिके राज्य में दीर्घतमा पहुंचे, धर्मात्मा राजा ने सिद्ध ऋषि जानकर सन्तानोंका वर मांगा और अपनी राणीको भेजा परन्तु अन्धा और वृद्ध जानकर राणी स्वयं न गयी किन्तु अपनी दाई को भेज दिया, उसमें ऋषिने ११ पुत्र उत्पन्न कर दिये, जब राजा को ज्ञात हुआ कि ये पुत्र मेरी राणी से नहीं हुए हैं तब राजा ने समझा कर फिर राणीको भेजा तब अङ्गादि पांच पुत्र हुए । इसी प्रकार ब्राह्मणोंने अनेक प्रतापी क्षत्रिय राजा उत्पन्न किये हैं वैसे अब भी ब्राह्मणसे कुरुवंश के राजा होने चाहिये इत्यादि"

इस लेख में भी नियोग वा शारीरिक मैथुन द्वारा क्षत्रियों की उत्पत्ति का कुछ भी लेख नहीं है हां, ऋषि दीर्घतमा ने जो मर्यादा नियत की है उस की अर्थापत्ति से यह

तो ज्ञात होता है कि पहिले पातिव्रत धर्म का विशेष प्रचार नहीं था किन्तु पतिके न रहने पर वा जीवित रहते भी अन्य पुरुष को कर लेने में विशेष पाप दोष नहीं माना जाता था। सृष्टि के आरम्भ में शिक्षा प्रणालीका प्रचार नहीं था उस समय पशुवत् प्रवृत्ति होनी सम्भव ही थी, उस समय के दृष्टान्त से अब भी वैसा करना चाहने वालोंको अपनी बाल्यावस्था का दृष्टान्त लेकर अब भी नंगे रहने में लज्जा संकोच नहीं करना चाहिये। दीर्घतमा ऋषिने नियोग वा मैथुन द्वारा अङ्गादि नामक प्रतापी क्षत्रिय राजाओं को पैदा नहीं किया था इस के लिये स्पष्ट प्रमाण यही है कि जब राजा ने दुबारा समझा कर राणी को ऋषि के पास भेजा तब—

तांसदीर्घतमाऽङ्गेषु स्पृष्ट्वादेवीमथाब्रवीत् ।
भविष्यन्तिकुमारास्ते तेजसादित्यवर्च्चसः ॥

दीर्घतमाने राणीके हाथ आदि अङ्गों को इस विचार से स्पर्श किया कि आंखों से नहीं देख सकते थे, हाथ से स्पर्श द्वारा जब जान लिया कि यह राणी है अन्य कोई दासी आदि नहीं है तब उसको आशीर्वादात्मक वरदान दिया कि तुम्हारे तेजस्वी प्रतापी सन्तान [क्षत्रिय राजा होंगे नियोगादि की रीति से शारीरिक मैथुन संयोग का यहां कुछ भी प्रमाण नहीं है इस से गु० समाजी का नियोग सिद्ध करने का प्रयास केवल हठ है॥

इस से आगे गु० समाजी ने व्यासकी उत्पत्ति का हाल लिखा है। सो व्यास जी की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई है उस के अधिकांश भाग को जब समाजी लोग नहीं मानते तब उनका दृष्टान्त व्यर्थ है। व्यास जी की उत्पत्तिमें चार बातें अद्भुत हैं, एक दिन को रात कर देना [तमसा लोकमा-

वृत्त] द्वितीय मत्स्यगन्धा सत्यवती को सुगन्धा कर देना ऐसा ही है कि जैसा मछली में से मछली का गन्ध हटाके सुगन्ध युक्त कर देना और तीसरे चौथे ये हैं कि—

सद्योत्पन्नःसतुमहान् सहपित्रात्ततोगतः ॥

शीघ्र ही उत्पन्न हो जाना और तत्काल बड़ा दश पन्द्रह वर्ष के तुल्य होकर पिता के साथ चले जाना । यदि समाजी लोग इन बातों को मानते हैं और व्यासोत्पत्ति के दृष्टान्त से नियोग चलाना चाहते हैं तो वे ऐसे किसी नियोगी को खोजकर लावें कि जो प्रथम तो दिन में रात्रि करके दिखावे द्वितीय नियोगिनी से मेल करके एक घण्टे के भीतर सन्तान को पैदा कर दे पश्चात् वह १५ मिनट में १५ वर्ष का होकर नियोगीके साथ भागता दिखा दिया जाय तो हम क्या सभी सनातनधर्मी ऐसे नियोग को मान लेंगे। और यदि व्यासोत्पत्ति की चार अद्भुत बातों को नहीं मानते तो व्यास के होने में प्रमाण ही क्या है ? । अर्थात् अद्भुत प्रकार से प्रकट होना ही व्यास जी का महत्त्व इतिहास के गौरव का वर्धक है । गु० समाजी ने व्यासोत्पत्ति का एक भी श्लोक इसी कारण नहीं लिखा कि अद्भुत को कैसे छिपाता ? । यदि समाजी लोग ऐसी अद्भुत कार्यवाही को नियोग मानलें और तेजस्वी तपस्वी प्रतापी क्षत्रियादि की उत्पत्ति नियोग द्वारा करके दिखादें तो भारतवर्ष का उद्धार वा सुधार सहज में हो सकता है । सत्य बात तो यह है कि इतिहास पुराणोंनें सिद्ध पुरुषों के अद्भुत अचिन्त्य काम लिखे हैं उनको कामासक्तों के नियोगादिसे मिलाना भूलहै॥

इस से आगे चित्राङ्गद और विचित्र वीर्य की राणियों में व्यास जी द्वारा राजा पाण्डु, आदि की उत्पत्ति का समाचार गु० समाजी ने लिखा है उस पर हम इतना ही क-

हना पर्याप्त समझते हैं कि वह भी सिद्ध पुरुषों का अद्भुत समाचार है। राजा धृतराष्ट्र की उत्पत्तिसे पहिले व्यास जी ने कहा है कि दश हजार हाथी के बलवाला विद्वान् बुद्धिमान् राजर्षि अन्धा सन्तान होगा। और उस अन्धे के सौ पुत्र होंगे। सो क्या संप्रति समाजियोंमें वा संसारमें कोई नियोगी पुरुष ऐसा है कि जो एक हाथीका बल वाला भी सन्तान करदेवे। तथा आगेका सब हाल बतावे कि वह सन्तान अन्धा काना लूला आदि कैसा होगा और उसके आगे के पुत्र होंगे। यदि ऐसा नियोगी कोई मिल सकता है तो उसे बताना चाहिये और जब ऐसा नियोगी पुरुष अब कोई नहीं है तो धृतराष्ट्रादिके दृष्टान्तसे समाजियोंका पक्ष कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता ऐसा मानलेना चाहिये। पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति भी वैसी ही सिद्धदशामें हुई है, गुप्त समाजीने पाण्डु और विदुरकी उत्पत्तिको पांचवां छठा नियोग लिखा है परन्तु उससे पहिले १। २। ३। ४। नियोग गिनाये नहीं हैं सो वास्तवमें एक भी नियोग नहीं हुआ है किन्तु व्यास जैसे सिद्ध पुरुषकी सर्वज्ञतादि सिद्धि और धृतराष्ट्रादिकी अद्भुत उत्पत्ति दिखाना इतिहासका अभिप्राय है। यदि व्यास के तुल्य कोई योगी सिद्ध पुरुष हो और वह योगबलसे दश हाथीके तुल्य बल वाला एक सन्तान उत्पन्न करदे तो भी हम ऐसे कृत्य को प्रामाणिक मानलेंगे ॥

कुन्तीसे कुमारी दशामें कर्णके उत्पन्न होनेको गु० समाजीने सातवां नियोग लिखा है सो इस पर हमें कुछ विशेष वक्तव्य नहीं है क्योंकि कुन्तीके तुल्य कोई समाजी किसी कुमारी कन्याको पहिले मन्त्र सिद्धि करावे। तब वह कन्या मन्त्रद्वारा सूर्यनारायणका आवाहन करे तब किसी समाजी मन्दिरमें कानके द्वारा सन्तान हो तो हम क्या सभी लोग उसे ठीक मानलेंगे। परन्तु स्मरण रहे कि जब ऐसी क यं·

वाहीका नाम नियोग किसी प्रमाणमें नहीं है तब गु० समाजीका नियोग लिखना मिथ्या है। यदि समाजी कहैं कि सूर्यका भूमिपर आना और कानसे सन्तानका होना असम्भव है तो सिद्ध हुआ कि समाजीके मतमें कर्णका उत्पन्न होना ही मिथ्या है इस कारण सातवां नियोग लिखना समूल खण्डित हो गया ॥

अब रहा सनातनधर्मके पक्षमें सो यहां कुछ भी असम्भव नहीं है क्योंकि यह प्रत्यक्ष सूर्यमण्डल कुन्तीके पास नहीं आया था कि जिसमें कुन्तीके जलजाने और सर्वत्र अन्धकार होनेकी शंका हो सकती हो। किन्तु सूर्यमण्डल जहां का तहां ज्यांका त्यों रहा केवल सूर्यमण्डलका अभिमानी सूर्यदेवता कुन्तीके पास मन्त्रबलसे आया और देवताके वरदानसे कानसे कर्ण पैदा हुए। मानुषी साधारण शक्तिके लिये तो कानसे सन्तान पैदा होना असम्भव है परन्तु दैवीशक्ति के लिये यह सभी सम्भव है इसलिये हमारे मतमें सब ठीक है ॥

गु० समाजीने आठवें नियोगके वारे में लिखा है कि महाभारत आदि पर्व अ० १२० में एकवीरपत्नी शारदण्डायनीकी जो कथा लिखी है कि उसने किसी सिद्ध ब्राह्मणसे दुर्जयादि तीन महारथ सन्तान पैदा किये। इस कथनसे आठवां नियोग सिद्ध करनेकी चेष्टा की है सो इसलिये ठीक नहीं कि हम पहिले ही लिखचुके हैं कि इतिहास पुराणोंमें सिद्ध पुरुषोंकी ऐसी अनेक कथायें हैं। संप्रति वैसे सिद्ध पुरुषोंका अभाव है। शारदण्डायनीने सिद्ध ब्राह्मण से दुर्जयादि तीन सन्तान उत्पन्न किये थे पर समाजी लोग किसी नियोगिनीसे एक भी दुर्जय महारथी पैदा करके दिखादें तो भी हम मानलेंगे कि सिद्ध लोगोंकी उत्पत्तिका महकमा नियोग है। इसी आठवें नियोगके साथ गु० समाजीने और भी निम्न लिखित विचार छपाया है—

पाण्डुरुवाच ॥

अथत्विदं प्रवक्ष्यामि धर्मतत्त्वं निबोधमे ।
पुराणमृषिभिर्दृष्टं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ॥ ३ ॥
अनावृताःकिलपुरा स्त्रियआसन्वरानने ! ।
कामचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि ! ॥४॥
तासांव्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगेपतीन् ।
नाधर्मोऽभूद्वरारोहे सहिधर्मःपुराभवत् ॥ ५ ॥
तञ्चैवधर्मंपौराणं तिर्यग्योनिगताःप्रजाः ।
अद्याप्यनुविधीयन्ते कामक्रोधविवर्जिताः ॥६॥
प्रमाणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः ।
उत्तरेषुचरम्भोरु कुरुष्वद्यापि पूज्यते ॥ ७ ॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः सहिधर्मः सनातनः ।
अस्मिंस्तुलोकेनचिरान्मर्यादेयंशुचिस्मिते ॥
स्थापितायेनयस्माच्च तन्मेविस्तरतः शृणु ॥८॥

भावार्थः—राजा पाण्डु अपनी पत्नी कुन्तीसे कहते हैं कि धर्मवेत्ता महात्मा ऋषियोंने जिसे यथार्थ जाना था उस धर्म तत्त्वको मैं तुमसे कहूंगा सो सुनो ॥ ३ ॥ पहिले समयमें सब स्त्रियां गाय भैंस आदि पशुओंके तुल्य नंगी रहती हुई अपनी इच्छासे सर्वत्र विचरनेवालीं स्वतन्त्र रहा करती थीं ॥ ४ ॥ कुमारावस्था से ही अपने २ पतियों का उल्लंघन करनेपर भी उनका वह काम अधर्म नाम अनुचित नहीं माना जाता था क्योंकि तब वही चाल वा परम्परा थी ॥ ५ ॥ वही धर्मनाम पुरानी चाल वर्त्ताव (रस्म) गाय भैंस भेड़ बकरी आदि तिर्यग्योनिकी स्त्रियों में अब भी बनी है । उन गाय भैंस आदिके व्यभिचारपर बैलों वा भैंसाओंमें ईर्षा द्वेष

लड़ाई फौजदारी नहीं होती । अर्थात् पहिले जो गौ किसी अन्य बैलसे बर्दावे और फिर अन्यसे तो पहिला बैल दूसरे से लड़ेगा नहीं और वह गौ दुराचारिणी भी नहीं समझी जावेगी ॥ ६ ॥ प्रत्यक्ष प्रमाणसे देखे धर्म नाम राग द्वेष रहित इस व्यवहार को महर्षियों ने अच्छा कहा है अर्थात् काम क्रोधके त्यागरूप धर्मको महर्षि लोग श्रेष्ठ मानते हैं । उत्तर कुरुओंमें यह चाल [रस्म] अब भी अच्छी मानी जाती है ॥७॥ यह सनातनधर्म नाम पुरानी चाल स्त्रियों पर कृपा करने वाली है क्योंकि स्त्रियों में काम अठगुणा है इस चालसे उनको कामभोगका यथेष्ट मौका मिल सकता है । परन्तु इस भारतवर्षमें जिसने जिस कारण यह पातिव्रतधर्म की मर्यादा स्थापित की है उसका हाल मुझसे सविस्तर सुनो ॥ ८ ॥

यहां गुप्त समाजीका अभिप्राय यह है कि जैसे पूर्वकाल में स्त्रियों का पातिव्रत धर्म त्यागना सनातनधर्म कहा माना गया था वैसे अब भी पातिव्रत धर्मके विरोधी नियोग और विधवाविवाहको सनातनधर्म मानलेना चाहिये । सो जब साफ लिखा है कि पहिले स्त्रियां नंगी रहतीं थीं यह बहुत पुरानी वा सृष्टिके आरम्भकी बात है जिनको सन्देह ही हो वे लोग ईसाइयोंसे दर्यापत करलेवें । बाइबिलमें यह लिखा है कि "पहिले जब संसार नहीं रचा गया था तब आदम-और हव्वा दोनों अदन की बाड़ी में आनन्दपूर्वक नंगे रहते थे । तब खुदा इन दोनोंसे बहुत प्रसन्न इस लिये था कि उनदोनों स्त्री पुरुषोंको यह खबर भी नहीं थी कि हम दोनों नंगे हैं । अदन की बाड़ी स्वर्गका बागीचा [नन्दन बन] था उसमें एक वृक्ष ऐसा था जिसका फल खा लेने से आदम हव्वाको अपने नंगे होनेका ज्ञान हो जाता यह बात आदम हव्वाको ज्ञात नहीं थी, खुदा की इच्छा भी यही थी कि यह समाचार आदम हव्वाको न बताया जाय परन्तु शैतान सदासेही

खुदाका-विरोधी रहा, उसने आदम हव्वाको बहका दिया कि तुम इस पेड़का फल खालो यह बहुत अच्छा है तब आदम हव्वाने फल खालिया उससे उनको यह ज्ञान हो गया कि हम नंगे हैं और नंगे रहने में लज्जा जानपड़ी तब उन दोनों ने अपने गुप्त स्थानोंमें पत्ते लपेटे, खुदाको इस समाचारका पता लगा तो इसी अपराधमें आदम हव्वाको स्वर्गसे भूमिपर गिरा दिया सारांश यह है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष जन्मसे बाल्यावस्थामें नंगे रहते हैं परन्तु नंगे रहने में उनको लज्जा कुछ नहीं होती न यह ज्ञात होता है कि हम नंगे हैं अपनी २ माता के उदर से सभी नंगे उत्पन्न होते हैं पीछे ज्यों २ कामवासना का गंध बढ़ता जाता है त्यों २ वस्त्र धारण करते हैं। माता पितादि वस्त्रों का अभ्यास न करावें तो वे कन्या पुत्र बहुत दिनों तक नंगे बने रहें॥

हम नंगे हैं ऐसा ज्ञान होना सनातनधर्म नाम पुरानी वा पहिली बात है इससे सिद्ध हुआ कि कामी होनेसे कामी न होना अच्छा है। तब क्या गुप्त समाजीका मतलब यह है कि पहिलेका दृष्टान्त लेकर अब बड़ी अवस्थामें भी स्त्री पुरुष नंगे रहें? अथवा क्या गुप्त समाजी का अभिप्राय यह है कि जैसे तिर्यग्योनिकी गाय भैंसी आदिमें व्यभिचार दोष नहीं माना जाता वैसे मनुष्य जातिमें पशुवत् व्यवहार चलना चाहिये। वास्तवमें मनुजी ने नियोग को इसी कारण पशुधर्म माना है। उत्तरकुरु कहने से किन्हीं लोगों का कथन है कि यूरोपदेश का ही नाम उत्तरकुरु है। वहां यूरुप में अब भी विवाह करना चाहती हुई कुमारी कन्या कई पुरुषोंके साथ दो २ चार २ दिन मेलमिलाप करके तब किसीके साथ विवाह करती हैं वैसा व्यवहार उन लोगोंमें अधर्म नाम अनुचित वा निन्दित काम नहीं माना जाता "उत्तर कुरुओं नाम यूरुपवासियों में प्रत्यक्ष आंखोंसे देखा वह व्यवहार अब भी

[एक स्त्री अनेक पुरुषोंसे मेल करे तो भी वह] पूज्य नाम प्रशस्त माना जाता है अर्थात् अनुचित नहीं माना जाता, क्या गुप्त समाजी का यहां भी यही प्रयोजन है कि उत्तर कुरु नाम यूरुपवासियोंके तुल्य यहांकी स्त्रियोंको भी स्वैरिणी स्वेच्छाचारिणी बनाया जावे। यदि समाजियोंका यही अभिप्राय है कि पशुओंके तुल्य स्त्री पुरुषोंका नंगा रहना और उत्तर कुरुओं के तुल्य व्यभिचारमें दोष न मानना किन्तु उस कामको उचित नाम धर्म मान लेना ठीक है तो वास्तव में बहुत ही घृणित वा निन्दित विचार है॥

अब रहा हमारे सनातनधर्मियोंके मन्तव्यानुसार विचार वा समाधान सो यह है कि पशुओंके तुल्य हम शिक्षितोंका धर्म नहीं होना चाहिये। पशुओंके लिये कोई धर्म शास्त्र नहीं, हमारे लिये धर्मशास्त्र रूप कानून बन गया है। जब २ लोकव्यवहारकी व्यवस्था चलनेमें दिक्कत पैदा होती है तब कानून बनता है। पहिले सृष्टिके आरम्भ कालमें जब तक कामशक्ति नहीं बढ़ी थी तब तक स्त्री पुरुष छोटे २ बालकोंके तुल्य काम क्रोध लोभ रहित शुद्ध विचार युक्त होते थे। जब क्रमशः कामवासनाओंकी तरक्की हुई तब व्यभिचार बढ़ने द्वारा अनेक अनर्थ होने सम्भव देखकर दीर्घदर्शी महर्षियोंने धर्मशास्त्र रूप कानून बनाया तदनुसार सनातनधर्मियोंको अपने धर्मकी व्यवस्था रखनी चाहिये। सो सबसे पहिले यह मर्यादा इस प्रकार हुई कि—

बभूवोद्दालकोनाम महर्षिरितिनःश्रुतम् ।
श्वेतकेतुरितिख्यातः पुत्रस्तस्याऽभवन्मुनिः ॥९॥
मर्यादेयंकृतातेन धर्म्यावैश्वेतकेतुना ।
कोपात्कमलपत्राक्षि ! यदर्थंतन्निबोधमे ॥ १०॥

श्वेतकेतोः किलपुरा समक्षंमातरंपितुः ।
जग्राहब्राह्मणःपाणौ गच्छावइतिचाब्रवीत् ॥११॥
ऋषिपुत्रस्ततःकोपं चकारामर्षचोदितः ।
मातरंतांतथादृष्ट्वा नीयमानांबलादिव ॥ १२ ॥
क्रुद्धंतन्तुपितादृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाचह ।
मा तात ! कोपंकार्षीस्त्वमेषधर्मःसनातनः ॥१३॥
अनावृताहिसर्वेषां वर्णानामङ्गनाभुवि ।
यथागावस्थितास्तात ! स्वेस्वेवर्णेतथाप्रजाः ॥१४॥
ऋषिपुत्रोऽथतंधर्मं श्वेतकेतुर्नचक्षमे ।
चकारचैवमर्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि ॥ १५ ॥
मानुषेषुमहाभागे नत्वेवान्येषुजन्तुषु ।
तदाप्रभृतिमर्यादा स्थितेयमितिनः श्रुतम् ॥१६॥
व्युच्चरन्त्याःपतिंनार्या अद्यप्रभृतिपातकम् ।
भ्रूणहत्यासमंघोरं भविष्यत्यसुखावहम् ॥१७॥
भार्य्यांतथाव्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम् ।
पतिव्रतामेतदेव भवितापातकम्भुवि ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जबतक धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा नहीं चली थी सृष्टिके आरम्भमें अशिक्षित बालकोंकी सी प्रवृत्ति थी उस समय पश्वादिके तुल्य मनुष्यादिकों, स्त्रियां भी नंगी रहती थीं। कुछ जंगली जातियोंमें कहीं २ अब तक भी अशिक्षित स्त्री पुरुष नंगे रहते हैं। उस दशाके पश्चात् जब कुछ २ शिक्षाप्रणालीका प्रचार देशमें हुआ चीर वल्कलादिके वस्त्र देशमें चले उसी कालमें एक उद्दालक नामी महर्षि हुए जिन की कथा छान्दोग्योपनिषद्में भी है, और उनका एक ज्ञानी धर्मनिष्ठ श्वेतकेतु नामक पुत्र हुआ। उस महात्मा श्वेतकेतुने जिस कारण यह पातिव्रत धर्मकी मर्यादा की थी सो तुम सुनो ॥१०॥

उद्दालकके सामने श्वेतकेतुकी माताका हाथ पकड़के एक अन्य ब्राह्मण लेचला। माताको इस प्रकार लेजाते देखकर ऋषि-पुत्र श्वेतकेतुको क्रोध आया तब श्वेतकेतु के पिता बोले कि हे तात पुत्र! क्रोध मत करो क्योंकि क्रोध न करना सनातनधर्मका नियम है। पहिले सृष्टिके आरम्भमें ब्राह्मणादि सब वर्णोंकी स्त्रियां भूमण्डल पर नंगी रहा करतीं थीं। सो ठीक यही बात है कि जैसे छोटे २ कन्या पुत्रोंकी उत्पत्ति रचना अर्थात् जन्मरूप सृष्टिके होने बाद अब भी काम वासनाका लेशमात्र भी गन्ध न होनेंसे सभी ब्राह्मणादि वर्णोंके छोटे २ कन्या पुत्र नंगे रहते हैं वैसे ही सृष्टिके आरम्भमें कामवासना नहीं थी इससे सभी स्त्रियां नंगी रहती थीं कि जैसे गौयें नंगी रहती हैं और उनको कुछ लज्जा नहीं होती वैसे ही मानुषी स्त्रियां भी थीं। इस कारण जबतक कोई कानून नहीं बना तबतक उस ब्राह्मण पर कि जिसने श्वेतकेतुकी माता का हाथ पकड़ा था कोई अपराध विशेष वा अभियोग नहीं लाया जा सकता था यह अभिप्राय उद्दालक का था किन्तु यह मतलब नहीं था कि यह काम अच्छा है तथा यह भी नहीं था कि तुम अपनी माताकी रक्षा न करो किन्तु उद्दालकका अभिप्राय यही था कि ब्राह्मण पर विशेष क्रोध मत करो शान्तिसे निषेध करदो। ऐसा अभिप्राय न होता तो श्वेतकेतुको उसके पिता फिर आगे भी रोकते वा कुछ कहते सो आगे फिर कुछ भी नहीं कहा ॥ १४ ॥

पिता के समझाने पर श्वेतकेतु ने उस पुरानी चाल को अच्छी न समझके सहन नहीं किया अर्थात् उस पुराने बर्त्तावको अनुचित अधर्म समझ कर माताकी रक्षा की ब्राह्मण को शान्तिपूर्वक हटादिया और तपस्वी श्वेतकेतुने पृथिवी पर अन्य पश्वादिको छोड़के केवल मानुष स्त्री पुरुषोंमें आगे के लिये यह मर्यादा स्थापित की कि यदि कोई मानुषी स्त्री

अपने पतिको छोड़के किसी अन्यपुरुषके पास जावेगी तो उसको अवश्य पाप लगेगा। उसी समयसे यह मर्यादा चली कि जो स्त्री अपने पतिका उल्लङ्घन करके परपुरुषसे प्रेम करेगी उस को ब्रह्महत्याके तुल्य महापातक लगेगा, और पतिव्रता कुमार ब्रह्मचारिणी, अनन्यभक्ता अपनी सती पत्नीको ऋतुकालमें भी छोड़कर अन्य वेश्यादिसे जो पुरुष प्रेम वा व्यभिचार करेगा उस पुरुषको भी ब्रह्महत्यारूप महापातक दोष अवश्य लगेगा। इस प्रकारका कानून पहिले २ श्वेतकेतु ने चलाया उस तपस्वी महर्षि श्वेतकेतुकी चलायी मर्यादा संसार में क्रमशः प्रचलित हुई। तदनन्तर इसी मर्यादा के अनुसार धर्मशास्त्र बनगये। जबसे यह मर्यादा चली तबसे फिर स्त्रियोंका नंगी रहना और यथेच्छाचारिणी होना रोकदिये गये अब वैसा वर्त्ताव कोई नहीं करता॥

यदि गुप्त समाजी महाशय का यही अभिप्राय हो कि पहिलेके वर्त्तावकी निन्दा करें वा पहिले कासा वर्त्ताव अब भी होना चाहिये तो वे स्वयं विचारें कि जैसे वे लोग अपनी अपनी माता भगिनी आदि प्रतिष्ठित, मान्य स्त्रियोंका हाल भी जानते हैं कि वे सब बाल्यावस्थामें नंगी रहा करतीं थीं और पांच छः वर्ष वा दश वर्षकी आयु तक सबके घरोंमें लज्जा किये बिना ही स्वच्छन्दतासे जाया आया करती और अनेक लड़की लड़कोंके साथ स्वतन्त्रतासे खेला करती थीं, क्या गुप्त समाजी अब बड़ी अवस्थामें भी उन मातादिका वर्त्ताव पहिले कासा स्वीकार करेंगे? यदि वैसा वर्त्ताव स्वीकार करें तो वैसा करके दिखावें अन्यथा सृष्टिके आरम्भका दृष्टान्त छोड़ें और धर्मशास्त्रीय नियमों के अनुसार स्त्री पुरुषों की मर्यादा जैसी वर्त्तमान है इसमें मनमानी हुज्जतबाजी न किया करें॥

यदि वे लोग यह कहें कि दो चार वर्षकी बच्ची कन्या में कामवासना के सर्वथा प्रसुप्त होनेसे नंगी रहने वा सर्वत्र

स्वतन्त्र होजनेमें किसी प्रकार की शंका ही नहीं होती कि वैसी हालत में कुछ खराबी होगी तो इसीके अनुसार आदि सृष्टिके स्त्री पुरुषोंमें काम वासनाका अभावसा था जिससे न तो लज्जाकी आवश्यकता थी और न सर्वत्र स्वतन्त्र होने से व्यभिचारकी शंका किसीको होती थी। जैसे अब ज्यों २ काम वासनाके क्रमशः जागनेकी सम्भावनाके साथ ही साथ लड़कियोंको वस्त्र पहिनाये जाते हैं। नंगी रहनेसे रोकी जाती हैं तथा सर्वत्र स्वतन्त्र डोलने से भी रोकदी जाती हैं वैसे ही सृष्टिके आरम्भमें भी जब पुरुषोंको ज्ञात हुआ कि स्त्रियों में क्रमशः कामवासना जागनेकी सम्भावना और व्यभिचार की शंका का अवसर है तभी से कानून बनने लगा॥

राजा पाण्डुने साफ कह दिया है कि [मर्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना] उस श्वेतकेतुने धर्मानुकूल मर्यादा बांधी इस कथनसे सिद्ध है कि उससे पहिले धर्मानुकूल मर्यादा नहीं थी, यदि पहिला वर्त्ताव भी धर्मानुकूल होता तो श्वेतकेतुने धर्मयुक्त मर्यादा स्थापित की यह कथन कदापि संगत नहीं हो सकता। इससे उस धर्मविरुद्ध वर्त्ताव का दृष्टान्त लेकर विधवाविवाहादिके प्रचार द्वारा पातिव्रत धर्म का नाश करनेकी चेष्टा करना कदापि उचित वा योग्य नहीं है॥

आगे गुप्त समाजीने महाभारत आदि पर्वके पूर्वोक्त श्लोक १३ [मा तात ! कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः] की भाषा लिखी है कि —"हे तात ! क्रोध मत कर क्योंकि यह सनातनधर्म है" इस पर गुप्त समाजी ने अरुचि और घृणा दिखाते हुए नोट दिया है कि "वाहरे सनातनधर्म" यहां पातिव्रतधर्म का नाशक विचार लिखते २ तथा एक २ स्त्री को ग्यारह २ पुरुषोंसे व्यभिचार की सम्मति देते २ गुप्तसमाजी की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। इस कारण श्लोक का उलटा मतलब समझकर नोट द्वारा सनातनधर्म की निन्दा की है।

अर्थात् गु० समाजीने स्त्री का पर पुरुषके साथ गमन रूप व्यभिचार को सनातनधर्म समझा। परन्तु वहां क्योंकि लगाना मनमाना है केवल सीधा २ अर्थ यह है कि 'हे पुत्र क्रोध मतकर यह [क्रोध न करना] सनातनधर्म है" ऐसे सीधे शुद्ध निर्दोष अर्थको विगाड़के कैसा बुरा विचार लिखा है सो पाठक जान सकेंगे। तदनन्तर गुप्तसमाजीने उसी प्रकरण के २५। २६। श्लोक लिखे हैं यथा—

ऋतावृतौराजपुत्रि ! स्त्रियाभर्त्तापतिव्रते।
नातिवर्त्तव्यइत्येवं धर्मंधर्मविदोविदुः ॥२५॥
शेषेष्वन्येषुकालेषु स्वातन्त्र्यंस्त्रीकिलार्हति।
धर्ममेवंजनाःसन्तः पुराणंपरिचक्षते ॥ २६ ॥

इन श्लोकों के भावार्थ पर गुप्तसमाजी ने नोट दिया है कि "इस श्लोक में व्यभिचार को ही सनातनधर्म माना है" समाजीका यह लेख परस्पर विरुद्ध इस लिये है कि महाभारतके उक्त सब श्लोक इस विचार से राजा पाण्डु ने कहे हैं कि मेरी स्त्री कुन्ती किसी ब्राह्मणादि पुरुषसे नियोग करके सन्तान पैदा कर लेवे क्योंकि राजाकी यह उत्कट इच्छा थी कि मेरे कोई पुत्र हो। यही मतलब गुप्त समाजी को भी इस लिये इष्ट होगा कि इससे नियोगकी पुष्टि होती है किन्तु राजा का यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि पुत्र न होने की दशामें भी मेरी स्त्री अन्य पुरुषसे व्यभिचार करे। उक्त दो श्लोकोंसे गुप्तसमाजीने राजा पाण्डुका यही मतलब सिद्ध किया है कि मेरी स्त्री व्यभिचार करे अर्थात् जब राजा पाण्डुने कुन्तीसे कहा कि "धर्मज्ञ लोग ऐसा धर्म कहते हैं कि प्रत्येक ऋतुकाल में स्त्री अपने पतिको छोड़के परपतिके पास न जावे यही धर्म है" तो सिद्ध हुआ कि ऋतुकाल में परपुरुषके पास जाना अधर्म है। और यह बात युक्तिप्रमाणसे

सिद्ध सभी जानते मानते हैं, कि ऋतुकालमें ही गर्भ रह स-कता है ऋतुसे भिन्नकालमें कभी किसीके गर्भ होकर सन्तान होना सम्भव ही नहीं । उसी ऋतुकालमें अन्यपुरुषके पास जाना अधर्म बताता हुआ राजा कुन्तीको निषेध करता है और ऋतुकालसे भिन्न समयमें स्त्री को इच्छा हो तो पर पु-रुषके पास जा सकती है कि जब सन्तान नहीं हो सकता तो इन अन्तिम दो श्लोकोंसे गु० समाजीका मत यह सिद्ध हुआ कि स्त्री ऋतुकालमें अपने ही पतिके पास जाय उससे भिन्न समय में भले ही अन्यके पास जाय इससे अन्यके साथ नियोगसे सन्तान होनेका खण्डन हो गया क्योंकि ऋतु से भिन्नकाल में सन्तान हो ही नहीं सकता । और पहिले प्रक-रणका अभिप्राय यह था कि पतिसे भिन्न अन्य पुरुषके साथ नियोग करके कुन्ती भी सन्तानोंको उत्पन्न करे ॥

अब पाठक महाशय थोड़ा ध्यान देंगे तो ठीक समझमें आ जावेगा कि परस्पर विरुद्ध हलफदरोगीमें गुप्तसमाजी कैसा गिरफ़ार हुआ है कि जो किसी प्रकार भी छूट नहीं सकता । अर्थात् यदि प्रकरणका मतलब यह माने कि सन्तान होनेके लिये कुन्तीका अन्य पुरुषसे नियोग कराना ही राजा का अभिप्राय था तो वही राजा ऋतुकालमें स्त्रीको अन्य पुरुष के पास जाने का निषेध नहीं करसकता, क्योंकि ऋतुकालमें अन्य पुरुषके पास जानेपर ही नियोग द्वारा सन्तान होसकते हैं और 'प्रत्येक ऋतुकालमें अपने पतिको छोड़के अन्य पु-रुषके पास न जाय" ऐसा निषेध राजाने किया तो अब अ-न्यके साथ नियोग द्वारा सन्तानोत्पन्न करनेका अभिप्राय कट जाता है । अन्तके दो श्लोक गुप्तसमाजीने व्यभिचारको स-नातन धर्म बताकर उसकी निन्दा दिखानेके लिये ही लिखे थे इस कारण वे ही दोनों श्लोक समाजी मत के खण्डनके कारण बन गये हैं ॥

अब रहा यह विचार कि हमारे मन्तव्यके साथ परस्पर विरोध क्यों नहीं है ? अर्थात् हमारे मतमें संगति कैसे लगेगी सो सुनिये । राजा पाण्डुका अभिप्राय तो वास्तवमें यही था कि किसी भी प्रकार से कुन्ती सन्तान पैदा करे क्योंकि मृगमुनिके शापसे राजा स्वयं असमर्थ हो चुका था चाहे नियोगसे ही सन्तान करे परन्तु राजाने किया यह नियोग का प्रस्ताव पूर्वपक्षके तौर पर था । राजाका अभीष्ट केवल सन्तानोत्पत्ति ही थी परपुरुषसे नियोग होना न होना कुछ भी अभीष्ट नहीं था । अन्तके दो श्लोकोंका अभिप्राय हमारे मतमें यह है कि पतिव्रता स्त्री ऋतुकाल में अन्य किसी पुरुषको सेवा आदर सत्कारके लिये आंखोंसे भी न देखे मनमें किसी पिता भाई आदिका ध्यान भी न करे न किसी की सेवा करे क्योंकि ऐसा करनेसे भी पतिका उल्लंघन होता है। इससे ऋतुकालमें केवल अपने पतिका ही ध्यान स्मरण दर्शन सेवादि करे तो जो सन्तान होगा वह ठीक २ पतिके ही रूप रंग गुण कर्म स्वभाव और वनावटका होगा, पतिका ही साक्षात् फोटो खिंच जावेगा, वही सन्तान कुल धर्म जातिधर्म का पूरा २ रक्षक होगा और पितृभक्त भी होगा। ऋतुकालमें यदि सती पतिव्रता स्त्री अन्य अपने पिता भ्राता वा किसी यति संन्यासी ज्ञानी योगी महात्माका शुद्धभावसे भी ध्यान स्मरण दर्शन वा सेवादि करेगी तो इतनेसे भी पतिका उल्लंघन हो जायगा और जिन २ का ध्यान स्मरण दर्शन सेवादि करेगी उन २ के रूप रंग वा गुणादि सन्तान में आ जावेंगे तव वह सन्तान अपने कुल धर्मका ठीक २ रक्षक न हो सकेगा । इस लिये ऋतुकालमें सती स्त्री अन्य पुरुषका ध्यान भी न करे । परन्तु ऋतुकालसे भिन्न समयमें चाहें तो यति संन्यासी ज्ञानी आदिके दर्शन वा सेवादि शुद्धभावसे कर सकती है अर्थात् अन्य समयमें पतिव्रता को भी योग्य पुरुष

पितादिके दर्शनादि करनेमें स्वतन्त्रता है। इस प्रकार हमारे मतमें व्यभिचारकी कुछ भी जिक्र यहां नहीं है इसी से वैसा विरोध नहीं आता। स्वामिदयानन्दजीका यह लेख (जो मनुष्य आप जैसा होता है वह अन्योंको भी अपने जैसे देखता वा करना चाहता है) यहां चरितार्थ होता है कि गु० समाजी नियोगादिके नामसे स्वयं व्यभिचार बढ़ाने की चेष्टा करता हुआ सनातनधर्ममें भी एक दृष्टि होनेसे व्यभिचार ही देखता है। अस्तु हमारे मतमें उक्त प्रकारसे ठीक संगति लगजाती है॥

आगे पाठकोंको हम स्मरण दिलाते हैं कि इससे पूर्व में जो हम १५ से १८ तक श्लोक लिख चुके हैं उन चारों श्लोकोंको गुप्त समाजीने चुरा लिया था अर्थात् १४ से आगे १९ वां श्लोक नियोग निर्णय पु० में छपाया है गु० समाजीने यह चोरी क्यों की थी? सो भी ध्यान दीजिये कि उक्त चारों श्लोकोंमें मर्यादा बांधी गयी और मर्यादा बांधनेसे पहिले जो कहीं २ व्यभिचार होना संभवित हुआ था उसका खण्डन किया है। गु० समाजीने पशुवत् अज्ञानदशा का दृष्टान्त दिखाके अर्थात् व्यभिचारकी बात दिखाकर उसी व्यभिचारके सहारेसे नियोगादि रूप व्यभिचार चलानेकी चेष्टा की है। सत्रहवें श्लोकमें साफ २ लिखा है "अपने पतिका किसी भी प्रकार उल्लंघन करने वाली स्त्री को आगे ब्रह्महत्या के तुल्य महापातक लगेगा,, यही मर्यादा श्वेतकेतुने बांधी थी। इसी अभिप्रायको गुप्त समाजी ने इस विचारसे चुराया वा छिपाया था कि यदि १७ वें श्लोक को प्रकाशित किया गया तो नियोग करना ब्रह्महत्याके तुल्य महापातक सिद्ध हो जायगा। तब धोखे की टट्टी के तुल्य जो कुछ नियोगके प्रमाण मानके लिखे हैं सो सत्रहवें श्लोकसे उन सबका खण्डन हो जायगा॥

अब पाठकगण सोचलें कि गु० समाजी की कैसी चोरी पकड़ी गयी ? कि जिससे बालू की भित्तिके समान बहाना मात्र खड़ी की हुई नियोगभित्ति निर्मूल नष्ट हो गई। शास्त्र के सिद्धान्तानुसार धर्म की मर्यादा का बताना कहना लिखना छपाना हमारा काम है क्योंकि हमारे लिये श्री भगवान् आज्ञा दे गये हैं कि—

तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंते कार्याकार्यव्यवस्थितौ॥

क्या कर्त्तव्य है वा क्या त्याज्य है इसकी व्यवस्था करने के लिये शास्त्र ही प्रमाण है सो स्त्री का द्वितीय पतिरूप नियोगादिके लिये शास्त्र स्पष्ट कहता है—

नद्वितीयश्चसाध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते।
नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौप्रेतेपरस्यतु ॥

इत्यादि प्रकारसे द्वितीय पतिका सर्वथा निषेध है परन्तु इस वेदशास्त्रविरुद्ध विधवाविवाह का प्रचार दिन २ बढ़ता दीखता है उसका हेतु कामासक्ति की उन्नति है। इससे अब यह चल जायगा रुकेगा नहीं॥

गुप्तसमाजी–देवर शब्दसे पतिके छोटेभाईका ग्रहण नहीं किन्तु—

देवरःकस्माद् द्वितीयोवरउच्यते।

देवर नाम क्यों है ? कि दूसरे वरका नाम होनेसे। यदि पतिके छोटेभाईका नाम होता तो (कौशल्ये देवरस्तेऽस्ति) अ० १०५ में व्यासजीको देवर क्यों बताती ? कुन्तीके भी बड़े पुत्र थे, विचित्रवीर्य छोटा था, उसीकी रानीके प्रति संवादहै॥

उत्तर–यहां गुप्तसमाजी बहुत ही गिरा है। क्योंकि (देवरः कस्मात्०) यह पाठ ही जब निरुक्तमें नहीं किन्तु एसियाटिकसोसायटी कलकत्तेके छपाये निरुक्तमें यह पाठ प्रक्षिप्तमें दिखाया है। इस कारण मूल निरुक्तका पाठ न होने

से प्रमाणकोटि में नहीं आ सकता तब उसका प्रमाण देना अग्निमें पानीका खोजना है। अब रहा (कौशल्ये देवरस्तेऽस्ति) इसमें व्यासको देवर क्यों कहा ? सो क्या समाजीको यह भी ज्ञात नहीं कि विचित्रवीर्य और व्यासजी दोनों ही सत्यवती के पुत्र थे। समाजीने लिखा है कि " कुन्तीके भी बड़े पुत्र थे विचित्रवीर्य छोटा था " सो यह महा अज्ञान है क्योंकि व्यासजी कुन्तीके पुत्र नहीं थे किन्तु सत्यवतीके थे। जिस समाजीको यह भी बोध नहीं कि व्यासजी और विचित्रवीर्य किसके पुत्र थे वह महाभारतके प्रमाणसे नियोगको सिद्ध करना चाहे यह कैसा अनर्थ है ?। यद्यपि व्यासजी पहिले होनेसे विचित्रवीर्यके छोटेभाई नहीं थे तथापि वेदविधिसे विवाह पूर्वक न होनेके कारण उनको देवर कहा तो कुछ अनुचित नहीं अथवा यों भी कह सकते हैं कि सत्प्रयोगोंके प्रचारानुसार ही कोष बना करते हैं इससे पतिके भाईका सामान्य नाम देवर है। ग्रन्थों में छोटे भाईका नाम देवर प्रायः आता और बड़े भाईका नाम कम आता है इस कारण प्रायः आनेवाले अर्थके सहारेसे कोषवालों ने पतिके छोटे भाईका नाम देवर लिख दिया है॥

इससे आगे गु० समाजीने पांचों पाण्डवोंकी उत्पत्ति के ९ से १३ तक पांच नियोग अपने नियोगनिर्णय पुस्तक पृष्ठ ४१ से ४४ तक में संख्या बढ़ानेके लिये लिखे हैं और पञ्चकन्याचरित्र पुस्तकमें भी ये सब लिखे हैं। उनका उत्तर देते हुए हम कुन्तीका सती नाम पतिव्रता होना तथा पाण्डवों की उत्पत्ति कैसे हुई सो आगे दिखाते हैं॥

कुन्ती के विषयमें गु० समाजी ने पञ्चकन्याच० पु० में लिखा है कि पतिके शापित होने पर भी युधिष्ठिरादि तीन पुत्रोंको पैदा करके तीन लोकमें विख्यात है अर्थात् तीन दे

वताओंसे उसका नियोग हुआ और क्वारोंके कर्ण भी पैदा हो चुके थे ॥

उत्तर-प्रातःस्मरणीयोंमें कुन्तीका नाम न आने पर भी कुन्ती एक सती पतिव्रता स्त्री थी। बाल्यावस्था में सूर्य नारायणके वरदानसे जो कान द्वारा कर्ण पैदा हुए सो उस में किसी स्थूल पुरुष से संयोग होने के कारण कुन्तीको कुछ दोष नहीं लगा था कानके द्वारा कर्णका उत्पन्न होना मानुषी रीतिसे असम्भव है परन्तु सिद्ध देवता के लिये ऐसे कोई भी काम असम्भव नहीं हैं जब कि सिद्धयोगी मनुष्यभी असम्भव कामों को सम्भव करके दिखा देता है तो देवताकी वात ही क्या है। कानके द्वारा कर्णके उत्पन्न होने के कारण ही कुन्ती अक्षतयोनि कन्या कहायी इसीसे कर्ण का नाम कानीन हुआ। गु० समाजीने पतिके शापित होने पर ऐसा लिखा है यहां शापित शब्द अशुद्ध है इससे ज्ञात होता है कि लिखने वाले महाशयको संस्कृतका बोध नहीं है। बोध होता तो भ्रम ऐसा लिखते क्योंकि शापित शब्दका अर्थ यह होगा कि पति के शाप दिलाये जाने पर सो यह अर्थ वहां नहीं घटेगा। युधिष्ठिरादि तीन पुत्र भी धर्मादि सूक्ष्म विग्रह वाले देवोंके वरदानमात्रसे उत्पन्न हुए थे इससे कुन्ती सर्वथा निर्दोष थी। यदि कोई भी आ० समाजी मांस हड्डीके स्थूल शरीर पुरुषको छोड़कर मन्त्रद्वारा किसी दिव्यशक्ति देवता को बुलाकर किसी नियोगिनीसे कोई पुत्र पैदा करवाके दिखादे तो हम इतनेसे भी जो कहै सो देंगे। अन्यथा मिथ्या दोष लगानेका पाप समाजी को लगेगा ॥

सती कुन्तीका तीन देवताओंसे नियोग हुआ समाजी का यह कहना सर्वथा मिथ्या है क्योंकि गुप्त समाजी देवयोनिको नहीं मानता जब देवता कोई थे ही नहीं तो नियोग किससे हुआ ?। इस कारण देवता न माननेके पक्ष

में वदतोव्याघात दोषसे समाजीका कथन उसीके लेख ने ख-
ण्डन करदिया। यदि गु० समाजी किसी मनुष्यका नाम दे-
वता मानता हो तो यह बात सभी प्रमाणों से विरुद्ध है।
सभी शास्त्रोंसे सिद्ध है कि देवता अमर हैं मनुष्य मर्त्य हैं।
[न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति—एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ती-
ति श्रुतिः] देवता न खाते हैं न पीते हैं केवल समर्पित व-
स्तुके अमृतांशको देखकर तृप्त होजाते हैं। परन्तु मनुष्य खाये
पिये विना कदापि जीवित नहीं रह सकते। यदि किसी
समाजीको आग्रह हो कि मनुष्य ही देवता हैं तो जो कुछ
भी खावे पीवे नहीं केवल देखकर तृप्त होजावे ऐसा मनुष्य
दिखाना चाहिये, परीक्षा होजाने पर हम भी वैसे मनुष्यको
देवता मानलेंगे। सो जब वैसा मनुष्य मिलना सम्भव ही
नहीं है तो सिद्ध हुआ कि देवता मनुष्ययोनिसे भिन्न योनि
हैं। मनुष्यका एकदिन रात ६० घड़ीका होता है देवोंका एक
दिन रात बारह महीनेका होता है। जैसे एक दिन रातमें
एक वा दोवार भोजन किया जाता है वैसे ही यदि कोई स-
माजी ऐसा हो कि जो एकवर्ष रूप बारह महीनोंमें एक दो
वार ही भोजन करे और हृष्ट पुष्ट बनारहे तो हम भी उस
समाजीको देवता मान सकते हैं। सो एक वर्षमें एक दो वार
भोजन करके जीवित रहना किसीका सम्भव नहीं इस कारण
मनुष्यसे देवताओंका पृथक् होना सिद्ध ही है। नियोग म-
नुष्यके ही साथ हो सकता है किन्तु देवोंके साथ नहीं, इसी
कारण किसी देवताके साथ कुन्तीका नियोग करना नहीं लिखा॥

बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि नियोग द्वारा युधिष्ठि-
रादिका उत्पन्न होना कहीं भी नहीं लिखा, तब गुप्त समाजी
ने "तीन देवतोंसे कुन्ती का नियोग हुआ" ऐसा मिथ्या
लेख क्यों लिखा? वा कहांसे लिखा, इन लोगोंको ऐसा मि-
थ्या लिखने में लज्जा संकोच क्यों नहीं होता?। अस्तु

अब हम महाभारत से दिखाते हैं कि धर्मादि देवतोंके वरदान मात्रसे युधिष्ठिरादिकी उत्पत्ति हुई है। आदि पर्व अ० ११२ में लिखा है कि पिताके घरमें रहती हुई कुन्तीने बाल्यावस्थामें तन मन धनसे महर्षि दुर्वासाकी बड़ी सेवा की थी, उस समय सेवासे संतुष्ट होकर महर्षि दुर्वासाने कुन्तीको एक मन्त्ररूप वरदान दिया था कि इस मन्त्रसे तुम जब किसी देवताको बुलाओगी तब वही देवता आजायगा और उस देवतासे जो चाहो वही कामना पूरी कर सकोगी। इसके अनुसार पाण्डु के विशेष कहने पर कुन्तीने देवताको मन्त्र द्वारा आवाहन करके देवताके वरदानसे पुत्र प्राप्त किये थे। महाभारत आदि पर्व अ० १२३—

वैशम्पायनउवाच—

संवत्सरधृतेगर्भे गान्धार्य्याजनमेजय ! ।
आह्वयामासवैकुन्ती धर्मार्थंधर्ममच्युतम् ॥१॥
सावलिंत्वरितादेवी धर्मायोपजहारह ।
जजापविधिवज्जप्यं दत्तंदुर्वाससापुरा ॥२॥
आजगामततोदेवो धर्मोमन्त्रबलात्ततः ।
विमानेसूर्यसंकाशे कुन्तीयत्रजपेस्थिता ॥३॥
विहस्यतांततोब्रूयाः कुन्ति! किन्तेददाम्यहम् ।
सातंविहस्यमानाऽपि पुत्रंदेह्यब्रवीदिदम् ॥४॥
संयुक्तासाहिधर्मेण योगमूर्त्तिधरेणह ।
लेभेपुत्रंवरारोहा सर्वप्राणभृतांहितम् ॥५॥
जातमात्रेसुतेतस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ।
एषधर्मभृतांश्रेष्ठो भविष्यतिनरोत्तमः ॥६॥

भावार्थ—महर्षि वैशम्पायनजी राजा जनमेजयसे कहते हैं कि जब गान्धारीको गर्भधारण किये एक वर्ष बीत गया तब कुन्तीने धर्मावतार युधिष्ठिरको प्रकट करनेके लिये साक्षात् धर्मका आवाहन किया। वह धर्म देवता अच्युत नाम रूप थे। धर्मदेवका शुक्र नाम वीर्य होता और गर्भाशयमें आता तो वे च्युत कहे जाते। वैसा न होने से ही धर्मका विशेषण अच्युत कहा गया है। तब कुन्ती देवी ने शीघ्रही धर्म देवता के नामसे भेंट समर्पणकी और महर्षि दुर्वासाके दिये मंत्रको जपा। तब धर्म देवता सूर्यवत् प्रकाशमान विमान पर चढ़के मंत्र जपके बलसे वहां आये कि जहां कुन्ती जप कर रहीं थीं, धर्म देवता हंसकर बोले कि हे कुन्ति! बोल तुझको हम क्या देवें तब कुन्ती ने कहा कि पुत्र दीजिये। तब योगमूर्त्ति नाम योगाग्निमय तेजःस्वरूप धर्मके साथ कुन्ती का संयोग हुआ उससे कुन्तीको सब प्राणियोंके हितैषी धर्मावतार पुत्र प्राप्त हुए। युधिष्ठिरके पैदा होते ही आकाशवाणी हुई कि यह नरोंमें श्रेष्ठ धर्मात्माओं का अगुआ राजा होगा॥ ६॥

पाठकगण! अब देखिये सोचिये कि क्या नियोग की यही रीति है? क्या समाजी लोग अच्युत धर्मका आवाहन करते हैं? क्या मंत्र जपते और मंत्रके बलसे नियोगिनी स्त्री नियोगी पुरुषको बुलाती है?। हम लोग तो यह साफ २ देख रहे हैं कि अनेक रूपोंसे विधवाओंको ललचाते फुसलाते हैं जिससे किसी प्रकार नियोग नाम रखके विषयासक्ति बढ़े। जब कि महासती पतिव्रता कुन्तीका साक्षात् धर्मके साथ संयोग हुआ जिसमें कुन्तीके मन वाणी शरीर सभी धर्ममय शुद्ध पवित्र होगये थे वहां भी इन समाजियोंको मनुष्यों कीसी विषय वासनाका गन्ध दीख पड़ा तो सम्भव है कि इन मलिन संस्कारियोंको सूर्योदयमें भी अन्धकार दीख पड़े तो भी आश्चर्य कुछ नहीं। एक पक्षी ऐसे होते हैं जिनकी आंखें

सूर्यका उदय होते ही मिट जाती हैं वैसे यहां भी साक्षात् धर्म सूर्यके उदय में मानुषी मैथुन समाजीको सूझा! छिः! इस से पहिले अ०१२२। श्लोक ४१में राजा पाण्डुने कहा है कि-

धर्मेणचापिदत्तस्य नाधर्मेरंस्यतेमनः ॥

हे कुन्ति! जिस पुत्र को धर्म देवता देंगे वह साक्षात् धर्म मूर्त्ति होगा उसका चित्त अधर्ममें कदापि नहीं रमेगा। जैसे देवता की कृपासे अथवा वरदानसे जो सन्तान होते हैं उनके माता पिता उनका नाम देवदत्त आदि रखते हैं और मानते हैं कि यह सन्तान हमको देवने दिया है। इसी लिये इसका नाम देवदत्त है। इसीके अनुसार भगवद्दत्त, भगवानुदीन, ईश्वरदत्त, रामदत्त, रामदीन, शिवदत्त, शिव दीन, कृष्णदत्त, गणेशदत्त, गौरीदत्त, विष्णुदत्त, इत्यादि नामों की प्रवृत्ति उस २ देवताकी कृपा वा उस २ देवके वरदानसे यह सन्तान प्राप्त हुआ ऐसे अभिप्रायसे होती है किन्तु संसारमें यह मतलब [गूढ़ाशय] कोई भी नहीं निकालता कि उन २ सन्तानोंकी माताओंने ईश्वरादि नाम रूप विग्रहके साथ नियोग किया था इससे उसका नाम ईश्वरदत्तादि हुआ। यदि समाजी लोग धर्मदेव के वरदान से हुए वा धर्मदेवने दिये युधिष्ठरकी उत्पत्ति नियोग से मानेंगे तो दत्तान्त वा दीनान्त सभी व्यक्तियों की उत्पत्ति नियोगसे माननी पड़ेगी [धर्मेणचापिदत्तस्य] युधिष्ठिरको धर्मने दिया था, इससे उनका गौण नाम-धर्मदत्त भी हो सकता है॥

जब पाण्डु राजाकी इच्छानुसार धर्मात्मा पुत्र युधिष्ठिर हो गये तब राजाने अपनी पत्नीसे कहा कि क्षत्रधर्म बलकी अधिकता से बड़ा है इससे हे कुन्ति! बली देवतासे अत्यन्त बली एक अन्य सन्तान को तू मांग।

प्राहुःक्षत्रंबलज्येष्ठं बलज्येष्ठंसुतंवृणु।

ततस्तथोक्ताभर्त्रा तु वायुमेवाजुहावसा ॥११॥
ततस्तामागतोवायु-र्मृगारूढोमहाबलः ।
किन्तेकुन्ति!ददाम्यद्य ब्रूहियत्ते हृदिस्थितम् ॥१२॥
सासलज्जाविहस्याह पुत्रंदेहिसुरोत्तम ।
बलवन्तंमहाकायं सर्वदर्पप्रभञ्जनम् ॥१३॥
तस्माज्जज्ञेमहाबाहु-र्भीमोभीमपराक्रमः ।
तमप्यतिबलंजातं वागुवाचाशरीरिणी ॥१४॥
सर्वेषांबलिनांश्रेष्ठो जातोऽयमितिभारत! ॥१५॥
तस्मिन्नहनिभीमस्तु जज्ञेभरतसत्तम ! ।
दुर्योधनोऽपितत्रैव प्रजज्ञेवसुधाधिपः ॥१६॥

भा०—श्लोक ११ में पाण्डुने कुन्तीसे कहा है कि (सुतं वृणु) पुत्रको मांग, यदि ग्राम्यधर्म द्वारा सन्तानका अभिप्राय होता तो ऐसा कहा जाता कि [नियोगेन पुत्रं जनय] नियोग करके बलिष्ठ पुत्र पैदा कर। यदि समाजी लोग इसको नियोग मानते हैं तो विधवा और रंडुओं के नियोग से इस समय सौ दो सौ पुरुष राममूर्त्ति के तुल्य ही बलवान् पैदा करदें तब उस से शारीरिक बल की उन्नति कुछ हो सकती है। और वैसे बलिष्ठ पुत्र हो जावें तो नियोग को वे लोग भी मानने लगेंगे कि जो अब तक युक्तिप्रमाणों से बराबर खण्डन कर रहे हैं। जब पाण्डुराजा की आज्ञा से कुन्तीने मंत्र द्वारा वायु देवता का आवाहन किया तब मृगपर चढ़ा वायुका अभिमानी महाबली देव आकर बोला कि हे कुन्ति। बोल जो तेरे मनमें हो, मैं क्या वस्तु तुझे दूं। तब कुन्तीने लज्जा पूर्वक हंसकर कहा कि हे सुरोत्तम! सभी का दर्पनाशक महाकाय महाबली पुत्र दीजिये। इस प्रकार वायु देवके वरदानसे पराक्रमी महाबाहु भीम पैदा हुए।

इन अतिबली भीमके पैदा होते ही आकाशवाणी हुई कि हे भरतकुलोत्पन्न जनमेजय राजन्! यह भीम सब बलवानोंमें श्रेष्ठ अतिबली प्रकट हुआ है जिस दिन भीमसेन पाण्डवका जन्म हुआ था उसी दिन राजा दुर्योधन जन्माथा जन्मसे ही इन दोनोंमें पूर्ण वैर था! इस उत्पत्तिमें भी नियोग होने वाली पुरुषके मनुष्यवत् संयोग होने का कहीं लेश मात्र भी नाम नहीं है, इससे वायु देवताके वरदानसे यहां भी उत्पत्ति हुई जानो। नियोगकी कल्पना मिथ्या है। इससे आगे तीसरे पुत्र अर्जुन की उत्पत्ति और भी साफ २ वरदानसे हुई लिखी है देखो महाभारत आदि पर्व अ० १२३—

ततोपश्यत्त्वातपसा पुत्रंलप्स्येमहाबलम्।
यंदास्यतिसमेपुत्रं सवरीयान्भविष्यति॥२३॥
अमानुषान्मानुषांश्च संग्रामेसहनिष्यति।
कर्मणामनसावाचा तस्मात्तप्स्येमहत्तपः॥२४॥
ततःपाण्डुर्महाराजो मन्त्रयित्वामहर्षिभिः।
दिदेशकुन्त्याःकौरव्यो व्रतंसंवत्सरंशुभम्॥२५॥
आत्मनाचमहाबाहु—रेकपादस्थितोऽभवत्।
उग्रंसतपआस्थाय परमेणसमाधिना॥२६॥

शक्र उवाच।

पुत्रंतवप्रदास्यामि त्रिषुलोकेषुविश्रुतम्।
ब्राह्मणानांगवांचैव सुहृदांचार्थसाधकम्॥२८॥
दुर्हृदांशोकजननं सर्वबान्धवनन्दनम्।
सुतंतेऽग्र्यंप्रदास्यामि सर्वामित्रविनाशनम्॥२९॥
इत्युक्तःकौरवोराजा वासवेनमहात्मना।
उवाचकुन्तींधर्मात्मा देवराजवचःस्मरन्॥३०॥

एवमुक्त्वाततःशक्र-माजुहावयशस्विनी ।
अथाजगामदेवेन्द्रो जनयामासचार्जुनम् ॥३५॥
जातमात्रेकुमारेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३४॥
कार्त्तवीर्यसमःकुन्ति ! शिवतुल्यपराक्रमः ।
एषशक्रइवाजय्यो यशस्तेप्रथयिष्यति ॥ ३७ ॥

भा०—महाबली भीमसेनके प्रकट हो जानेपर पाण्डु राजाने शोचा कि बाहुयुद्धमें सर्वोपरि बली सबको जीतने वाला तो मेरा द्वितीय संतान हो गया परन्तु धनुर्वेद की शस्त्रास्त्र विद्यामें सर्वोपरि नामी किसीसे कभी न हारने वाला एक तीसरा संतान और होना चाहिये ऐसे विचारसे राजा पाण्डुने देवराज इन्द्रकी आराधना उपासनाका विचार तपोबलके द्वारा किया कि देवराजको अपने तपोबलसे संतुष्ट करके महाबली इष्ट पुत्रको प्राप्त हो जाऊंगा। देवराज जिसपुत्रको देंगे वह श्रेष्ठ अवश्य होगा। अधर्मी मनुष्यों तथा दैत्यराक्षसादि को वह संग्राममें मारेगा । इस लिये मन वाणी और शरीर से मैं प्रबल तप करूंगा। ऐसे विचारसे राजा पाण्डुने महर्षियोंसे सम्मति लेकर एकवर्ष तक कुन्तीको अच्छा शुभव्रत करने की आज्ञा दी। और स्वयं भी एक पगसे खड़े होकर अति सावधानीसे उग्रनाम प्रबल तप किया ऐसा तप देखकर बहुतकालके पश्चात् देवराज इन्द्र आकर बोले कि हे राजन् ! ब्राह्मण गौ और धर्मात्माओंका विशेष हितकारी तीनों लोकमें विख्यात पुत्र तुमको दूंगा। वह दुष्टोंको शोकयुक्त करने वाला और सब भाइयोंको संतुष्ट करने वाला होगा। और वह सब शत्रुओंका नाशक उत्तम कक्षाका पुरुष होगा देवराज इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ धर्मनिष्ठ राजा कुन्ती से बोला कि हे कुन्ति ! देवराज इन्द्र संतुष्ट हो गये मुझ को वे पुत्रका वरदान देंगे इसलिये मन्त्र द्वारा इन्द्रका आवाहन करो

ऐसा कहनेपर मन्त्र जप होमके द्वारा कुन्तीने इन्द्र देवता का आवाहन किया और देवराज इन्द्रने उपस्थित होकर पुत्र का वरदान दिया तब अर्जुन प्रकट हुए अर्जुनके उत्पन्न होते ही आकाशवाणी हुई कि यह शिवजीके तुल्य पराक्रमी और कार्त्तवीर्यके तुल्य बलवान इन्द्रके तुल्य अनिवर्ती योद्धा पाण्डु तथा कुन्तीकी कीर्त्तिका विस्तार करनेवाला होगा। अब पाठक लोग शोचें कि क्या नियोग ऐसेही होता है? क्या नियोग करने वाले समाजी भी व्रत वा तप किया करते हैं?। जब यहां नियोग सम्बन्धी ग्राम्यधर्म (मैथुन) का नाम ही नहीं है तो समाजियोंको वैसा क्यों सूझता है? ॥

आगे मु० समाजीने नकुल सहदेव दो पाण्डवों की उत्पत्तिको १२।१३ बारहवां और तेरहवां नियोग निम्न श्लोक से लिखा है महा भा० आदिप० अ० २४ ॥

ततोमाद्रीविचार्य्यैव जगाममनसाश्विनौ।

तावागम्यसुतौतस्यां जनयामासतुर्यमौ ॥१६॥

भा०–तदनन्तर माद्रीने पुत्रोत्पत्तिका विचार करके ही मनसे अश्विनीकुमारोंका स्मरण किया तब अश्विनीकुमार रोंने आकर माद्रीमें नकुल सहदेव दोनों पुत्रोंको पैदा किया यहां भी नियोग तथा मानुषी मैथुनका नाम भी नहीं है। इसी अ० २४ का श्लोक १९—

नामानिचक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः ॥

भा० जब पांचों पाण्डव उत्पन्न हो चुके तब शतशृङ्ग पर्वतपर तप करने वाले ऋषि मुनियोंने पांचोंके युधिष्ठिरादि नामकरण संस्कार किये। अब यह विचारना चाहिये कि यदि पाण्डवलोग मानुषी रीतिके नियोगसे पैदा हुए होते तो कमसे कम एक संतान होने पश्चात् दो वर्ष पूरे होनेतक द्वितीय सन्तान उत्पन्न हो सकता है क्योंकि संतानो

त्पत्तिके लिये स्त्री का ऋतुमती होना अत्यावश्यक है और सन्तान होने पर एक वर्षके बाद स्त्री के शरीर में रज का संचय होता है तब मासिक धर्म होने पर अगले सन्तान का गर्भ रह सकता है। इस प्रकार एक २ सन्तान की उत्पत्ति के लिये दो २ वर्ष ही माने जावें तो युधिष्ठिर दो वर्ष के हुए तब भीम पैदा हुए और भीम दो वर्ष के हुए तब अर्जुन पैदा हुए, तत्पश्चात् नकुल सहदेव एक वर्ष में पैदा हुए मान लो तो पांच वर्षके होने पर युधिष्ठिर का तीन वर्षके होने पर भीम का और एक वर्ष के होने पर अर्जुन का नाम करण संस्कार होना सिद्ध होता है सो क्या ऋषियोंने शास्त्र मर्यादा से विरुद्ध इतने काल पश्चात् नामकरण संस्कार कराया ? क्या इस बातको कोई समाजी सिद्ध करेगा ?। वास्तव में सत्य बात तो यही है कि सिद्ध देवताओंके प्रतापसे तथा वरदान से युधिष्ठिरादि सभी पुत्र उसी २ देवताके आवाहनके दिन तत्काल ही पैदा हुए थे और मानुषी रीतिसे तत्काल कोई सन्तान उत्पन्न हो नहीं सकता। और अगले श्लोक से भी यह बात सिद्ध होती है कि अ० २४—

अनुसंवत्सरंजाता अपितेकुरुसत्तमाः ।
पाण्डुपुत्राव्यराजन्त पञ्चसंवत्सराइव ॥२२॥

भा०—सब पांचों पाण्डव एक वर्षके होने पश्चात् पांच वर्षकी आयु के तुल्य शक्ति वाले प्रतीत होने लगे थे। यदि युधिष्ठिर से चार वर्ष पीछे अर्जुन होते तो अर्जुनके एक वर्ष के होने पर युधिष्ठिर पांच वर्ष के होने चाहिये। ऐसी दशा में सब एक साथ एक वर्षके हों ऐसा हो नहीं सकता इस लिये उक्त श्लोकसे भी यही सिद्ध है कि दिव्यशक्ति देवोंके वरदान मात्र से दो ही तीन दिनके भीतर सब पाण्डव उत्पन्न हुए और नियोगादि किसीका किसीसे नहीं हुआ था॥

यदि कोई कहे कि भीमसेनकी उत्पत्तिके पश्चात् राजा पाण्डुने कुन्ती को संवत्सर व्रत करनेकी आज्ञा दी तो दो चार दिनमें सब पाण्डव कैसे उत्पन्न हो सकते और इस दशा में सब एक साथ एक वर्ष के हो सकें यह भी नहीं हो सकता। तब इसका संक्षेपसे समाधान यह है कि छः ऋतु जिस में बीत जावें उसका नाम संवत्सर है और एक दिन रात्रिमें भी छहों ऋतु बीत जाते हैं इसी कारण कल्पसूत्रकारने एक दिन रात्रि का नाम भी संवत्सर माना है वैसा ही यहां भी मान लेनेसे पांचों पाण्डव एक साथ एकवर्षके होने सिद्ध हो जावेंगे। इस प्रकार यहां नियोग का नाम भी नहीं है॥

आगे नियोग निर्णय पु० पृ० ४४ में गु० समाजी ने लिखा है कि "अब कुछ अन्य ग्रन्थोंके प्रमाण लिखते हैं। वाल्मीकीय के किष्किन्धाकाण्ड में तारा के साथ सुग्रीव का, और युद्ध काण्डमें मन्दोदरीका विभीषणके साथ नियोग रामचन्द्रजी की आज्ञा से हुआ है। ये १५ नियोग दिग्दर्शन मात्र दिखाये हैं॥

उत्तर—वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धा और युद्ध काण्ड दोनोंमें तारा और मन्दोदरी के नियोग का कुछ भी प्रमाण नहीं है। अनुमान होता है कि गु० समाजीने धोखा देनेके लिये बिलकुल मिथ्या लिखा है। तथापि हम सनातन धर्मी लोगोंको सूचना दे रखते हैं कि वे मार्फत मालिक स्वामि प्रेस मेरठ के गुप्त समाजी के नाम पत्र भेजकर तारा और मन्दोदरीके नियोगके पते सहित प्रमाण के श्लोक मांगें और यदि गु० समाजी वाल्मीकीय रामायण के पते सहित प्रमाण लिखे तो उनको हमारे पास भेजें हम अवश्य ही यथोचित उत्तर देवेंगे। इस लिये इस प्रसंगमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है॥

गु० समाजी अब थोड़ेसे प्रमाण पाराशरी स्मृतिके लिखते हैं. अ० १० श्लोक २५—

यथाभूमिस्तथानारी तस्मात्तांनतुदूषयेत् ॥

इस पर गु० समाजी ने टिप्पणी लिखी है कि (जिस राजा का राज्य उसकी स्त्री पृथिवी हो जाती है)

उत्तर—इस लेख से समाजीका अभिप्राय यह है कि स्त्री जब जिस किसी जाति कुजातिसे व्यभिचार करे तो भी उसे दूषित नहीं मानना चाहिये। परन्तु यह विचार मिथ्या है क्योंकि पराशर जीका अभिप्राय यह है कि अभक्ष्य भक्षणादि अन्य दोषोंका प्रायश्चित कराके स्त्री को भूमिके तुल्य शुद्ध करले त्यागे नहीं क्योंकि व्यभिचार विषयक दोष लगने पर पराशर जी ने स्त्री का स्वयं त्याग दिखाया है ॥ अ० १०। ३२ ॥

अन्येनजनयेद्गर्भं मृतेत्यक्तेगतेपतौ ।
तांत्यजेदपरेराष्ट्रे पतितांपापकारिणीम् ॥३०॥
कामान्मोहाद्वयागच्छे-त्त्यक्त्वाबन्धून्सुतान्पतिं
साऽपिनष्टापरेलोके मानुषेतुविशेषतः ॥३२॥

भा०—पतिके मरजाने पर, त्याग देने पर, वा कहीं देशान्तरमें चले जाने पर, जो स्त्री किसी अन्य पुरुष से गर्भवती हो जावे तो उसे राजा देशसे निकाल दे अन्य राज्यमें छोड़ देवे क्योंकि वह पापिनी और पतित हो गयी है॥ ३०॥ तथा जो स्त्री कामातुर होके वा अज्ञानवश होके भाई बन्धु, पुत्र और पति को छोड़ के अन्य किसी पुरुषके घर में जा वसे वह भी परलोक से नष्ट होती अर्थात् उसका परलोक बिगड़ जाता है और संसार में तो निन्दित पतित विशेष कर हो ही जाती है। इत्यादि प्रमाणोंसे महर्षि पराशर जी ने अन्य पुरुष से मेल करने रूप व्यभिचार में स्पष्ट ही स्त्री को त्याज्य कहा है। इससे गु० समाजीका लिखना मिथ्या है॥

गु० समाजी पराशर स्मृति अ० ७। श्लोक—

रजसाशुध्यतेनारी विकलंयानगच्छति ॥

नारी रजस्वला होने पर शुद्ध हो जाती है।

उत्तर—वास्तव में गु० समाजी ने पुस्तक पूरा करने के लिये ही बहुतसे श्लोक लिख मारे हैं। इस पराशर के उक्त श्लोक का ठीक २ अर्थ यही है कि जो स्त्री विकलता को प्राप्त न हुई हो अर्थात् परपुरुषसे व्यभिचार न किया हो किन्तु केवल उसका चित्त चलायमान हुआ हो तो वह रजस्वला होनेपर मानस पाप से शुद्ध हो जाती है। यही बात अ० ५ में मनुजीने कही है॥

रजसास्त्रीमनोदुष्टा संन्यासेनद्विजोत्तमः।

मनमें जिसके दोष उत्पन्न हुआ हो अर्थात् जिसका मन चलायमान हुआ हो वह स्त्री मासिक रजोधर्म होने पर उस मानस पापसे शुद्ध हो जाती है। यहां नियोगादिका नाम भी नहीं है॥

इससे आगे गुप्तसमाजीने पराशरस्मृतिको कलियुगके लिये बताकर महर्षि पराशरके नाम से निम्न लिखित ५ श्लोक लिखे हैं॥

अमीमांस्यानिशौचानि स्त्रीणांव्याधितस्यच।
नस्त्रीदुष्यतिजारेण ब्राह्मणोवेदकर्मणा ॥१८९॥
नापोमूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहतिकर्मणा।
पूर्वंस्त्रियःसुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववन्हिभिः ॥१९०
भुञ्जतेमानवाः पश्चा-न्नतादुष्यन्तिकर्हिचित्।
असवर्णस्तुयोगर्भः स्त्रीणांयोनौनिषिच्यते॥१९१॥
अशुद्धासाभवेन्नारी यावद्गर्भंनमुञ्चति।
विमुक्तेतुततःशल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥१९२॥

तदासाशुध्यतेनारी विमलंकाञ्चनंयथा ॥
प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणांयद्रजोभवेत् ।
नतेनतद्व्रतंतासां विनश्यतिकदाचन ॥१९९॥

अर्थ—रोगी पुरुष और स्त्रियोंकी शुद्धि मीमांसा के योग्य नहीं है । स्त्री जार कर्मसे दूषित नहीं होती, ब्राह्मण वेद कर्मसे ॥ १८९ ॥ जल विष्ठा मूत्रसे, अग्नि दाहकर्नेसे अशुद्ध नहीं होता । प्रथम स्त्रियां सोम, गन्धर्व, अग्नि देवों ने भोगी हैं, पीछे मनुष्य भोगते हैं इस लिये वे दूषित नहीं होतीं ॥१९०॥ असवर्ण का गर्भ स्त्रियोंकी योनिमें जानेसे जब तक गर्भ न छोड़ें तब तक वे नारी भ्रष्ट रहती हैं । गर्भ निकलने पर रजस्वला भी होजावें ॥१९॥ तब तपे सोने के समान शुद्ध होजाती हैं । बड़ी भारी तपस्या का फल है कि जो स्त्रियोंके रज होता है इससे इनका व्रत भंग नहीं होता ॥१९९॥ जब स्त्री अशुद्ध होकर भी प्रतिमास शुद्ध हो जाती है तो फिर वह कैसे पतित हो सकती है ? । परन्तु हमारे मंत्र को ये लेख नहीं भाते हैं ॥

उत्तर—ऊपरका सब लेख गुप्त समाजीने नियोग निर्णय पु० पृ० ४६ । ४७ में छपाया है । अब इसका संक्षेप से उत्तर दिया जाता है सो देखिये—ऊपर लिखे श्लोकोंमें से पराशर स्मृति में एक भी नहीं है, गुप्त समाजी ने पराशर महर्षि को सर्वथा हीं मिथ्या दोष लगाया है । सनातन धर्मियोंको उचित है कि समाजियोंसे सभाओंके बीच पूछें कि पराशर स्मृतिमें ये श्लोक दिखाइये और न दिखा सको तो मानलो कि हमारा लेख झूंठा है । जब पराशर स्मृतिमें उक्त श्लोक हैं ही नहीं तब कोई दिखावेगा ही कहां से ? । पराशर स्मृति अ० १० के ३० । ३२ । दो श्लोक हम ऊपर लिख चुके हैं जिनसे सिद्ध है कि अन्य पुरुष से गर्भवती हो जाने वाली

स्त्री को देश निकाले का दण्ड होना चाहिये । यद्यपि उक्त श्लोक पराशर स्मृति में नहीं हैं तथापि अन्यत्र कहीं होने सम्भव हैं इससे हम उन का धर्मशास्त्र के सिद्धान्तानुसार शुद्ध निर्दोष अर्थ संक्षेपसे लिखे देते हैं कि जिससे पाठकोंका भ्रम भी दूर हो जायगा ॥

भावार्थ--रोगी तथा स्त्रियां दिशा जाने आदिके पश्चात् मट्टी जल से हाथ धोने आदि की शुद्धि अन्य स्वस्थ पुरुषों की अपेक्षा कम करें तो भी कुछ हानि नहीं है ऐसा ही लोक में भी माना जाता है । अष्टविध मैथुनमें अन्य पुरुष पर स्त्री का मन चलायमान होना भी जार पुरुष के साथ मानस मैथुन है उस मानस मैथुनसे स्त्री त्यागने योग्य दूषित नहीं होती किन्तु (रजसा स्त्री मनोदुष्टा) इस मनुके कथनानुसार रजोधर्म होने पर शुद्ध होजाती है । लोक विरुद्ध अर्थात् क्षत्रिय वैश्य यजमान का पकाया पुरोडाश वा चरुका यज्ञ शेष भाग खाना वा सोम यागमें उच्छिष्ट ग्रह नामक पात्रों से परस्पर सोमपान करना इत्यादि वेदोक्त कामों से यज्ञ में ऋत्विज् हुए ब्राह्मण दूषित नहीं होते ॥१८९॥ नदीके प्रवाह से वहते हुए जलमें मूत्र पुरीषादि पड़जाय तो वह जल दूषित नहीं माना जाता जैसा कि पराशर अ० ७ । ४ में कहा है कि (नदीवेगेनशुद्ध्येत लेपोयदिनविद्यते) अर्थात् जितने मल मूत्रसे नदीके जलकी स्वच्छता नष्ट न हो तो वह नदी प्रवाह के वेग से शुद्ध हो जाती है । श्मशानादिमें मुर्दादिके जलानेसे अग्नि दूषित नहीं होता जैसा मनुजीने अ०९। ३१८ में कहा है कि (श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावकोनैवदुष्यति) (सोमः प्रथमो विविदे०) इत्यादि वेदमन्त्रमें लिखे अनुसार वाल्यावस्थामें सोम गन्धर्व और अग्नि देवताका आधिपत्य कन्याओं परहोता है तो भी देवच्छायासे वे दूषित

नहीं होतीं परन्तु अन्य मनुष्यसे तो अवश्य दूषित होजाती हैं जैसा कि पराशर अ० १० । ३२ में लिखा है ॥

नश्री दुष्यतिजारेण०) से जो कहा है उसी का विशेष व्याख्यान (असवर्णस्तुयोगर्भः०) से दिखाया है—

योनिपदेनात्र कारणमभिधीयते । स्त्रीणां योनिः कारणमन्तःकरणमहङ्कारादेव स्त्रीत्वपुंस्त्वसर्गस्य जायमानत्वात् । स्त्रीणां योनावन्तःकरणे योऽसवर्णो गर्भोऽसवर्णपुरुषस्य प्रतिबिम्बरूपो निषिच्यते नितरामापतति । सा च तेन मलिनान्तःकरणाऽशुद्धा चलचित्ता मनोदुष्टा तावद् भवति यावत्तं गर्भं प्रतिबिम्बमन्तःकरणान्न मुञ्चति न त्यजति। तस्मिंश्च मनोगते कण्टकरूपे जारे पापमिदमिति ज्ञात्वा विस्मृते रजोधर्मे च जायमाने वन्हौ काञ्चनमिव नारी शुध्यति । अयमेवार्थः सर्वमन्वादि धर्मशास्त्रसिद्धान्तानुकूलः । गर्भश्च सर्वत्रैव गर्भाशये निषिच्यते । तस्मादपि सोऽर्थोऽसाधुरेवेत्यलं बहुना ॥

भावार्थ—योनि नाम कारण का है, स्त्रीपन पुरुषपन की रचनाका योनि नाम कारण अहङ्काररूप अन्तःकरण है क्योंकि अहङ्कारसे ही स्त्रीत्व पुंस्त्वकी सृष्टि होती है । उस स्त्रीपनके कारण अन्तःकरणमें जो असवर्ण नाम पतिसे भिन्न पुरुषका प्रतिबिम्बरूप गर्भ आता है वह स्त्री उससे अपवित्र मन वाली मनोदुष्टा चञ्चलचित्त वाली तबतक होजाती है कि जबतक परपुरुषके प्रतिबिम्बको मनसे नहीं त्यागती और जब मनसें

आये उस कण्टकरूप जारको यह मानस पाप है ऐसा जान-कर भुलादेती और पुनः रजोधर्म होता है तब वह स्त्री निर्मल सुवर्णके तुल्य शुद्ध होजाती है। उक्त श्लोकका यही अर्थ मनु आदिके कहे सब धर्मशास्त्रों के अनुकूल है। गु० समाजी के किये अर्थमें एक यह भी अयोग्यता वा अशुद्धि है कि सर्वत्र ही गर्भाशय में गर्भ रहता है उपस्थेन्द्रियमें नहीं तिससे भी वह अर्थ ठीक नहीं है। आगे (प्रारब्धदीर्घ०) इस अन्तिम श्लोकका अर्थ गु० समाजीने अक्षरार्थ से ही अशुद्ध किया है सो मलिनान्तःकरण होनेसे समाजीको शुद्ध अर्थ नहीं सूझा। गु० समाजीका पूर्व कहा अर्थ यह है कि "बड़ी भारी तप-स्याका फल है कि जो स्त्रियों के रज होता है इससे इनका व्रत भंग नहीं होता।" पाठकगण! इस अर्थ को और हमारे लिखे ठीक शुद्ध अर्थको श्लोकसे मिलाकर देखें। हमारा अर्थ देखो-"जिन स्त्रियों ने ब्रह्मचारिणी रहती हुई किसी चा-न्द्रायणादि व्रतरूप तप करनेका आरम्भ किया हो तब उन्हीं तप करनेके दिनोंमें रजोधर्म होने लगे तो बीचमें दैववश तीन दिन अशुद्ध रहने पर भी उन स्त्रियोंका वह तपोरूप व्रत ख-ण्डित नहीं होता" यदि गुप्त समाजीको एकान्तमें कोई वेद की शपथ देकर पूछे तो अवश्यमेव स्वीकार करेगा कि भी० श० का किया अर्थ ठीक और हमारा किया अशुद्ध है॥

आगे गु० समाजीने (साचेदक्षतयोनिः०) इस मनुके श्लोक को लिखा और उसीके साथ याज्ञवल्क्य और वसिष्ठ के दो श्लोक लिखके पुनर्भू वा दिधिषू का पुनर्विवाह सिद्ध करनेका उद्योग किया है। और मनुके श्लोकका अर्थ भी अशुद्ध किया है। इस पर यहां विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि सम्पादक वे० प्र० इसी दिधिषू पदके अर्थ पर सेठ माधवप्र-साद जी से हारचुके हैं और उसका पूरा २ व्याख्यान हम

इसी पुस्तकमें दिखाचुके हैं जिसमें दिधिषूका पापिनी होना सिद्ध होगया है ॥

आगे–गु० समाजीने नारदके नामसे निम्न श्लोक लिखाहै–

उद्वाहिताऽपिसाकन्या नचेत्संप्राप्तमैथुना ।
पुनःसंस्कारमर्हैत यथाकन्यातथैवसा ॥

इस श्लोकमें कन्या शब्द भी पढ़ा है और हम पहिले इसी पुस्तकमें यह सिद्ध कर चुके हैं कि कुमारी का नाम कन्या है तब जिसका सप्तपदी पर्यन्त विवाह हो जावे वह कुमारी नहीं रहने से कन्या नहीं कहाती ऐसी दशा में नारद का कथन वदतोव्याघात दोष ग्रस्त हो सकता है इस लिये यहां उद्वाहिता शब्द का अर्थ यही है कि वाग्दानादि रूप विवाह हो जाने पर कन्यापन बना रहता है। परन्तु ऐसी दशामें भी उस कन्याका पितादि न होनेके कारण विवाहार्थ वरके ही घर में आजाने पर सप्तपदी पर्यन्त विवाहसे पहिले ही यदि उसका मैथुन उसी वरके साथ हो जावे तो भी अन्यके साथ संस्कार नहीं हो सकता ॥

द्वितीय यह बात भी विचारणीय है कि—

मन्वर्थविपरीता या सास्मृतिर्नैवशस्यते ॥

मनुके अर्थसे विपरीत स्मृति प्रशंसाके योग्य नहीं होती किन्तु मन्वर्थसे विपरीत स्मृतिका कथन एक देशी माना जायगा और मनुजी का सिद्धान्त हम पहिले ही लिख चुके हैं कि मनु जी सती साध्वीके लिये कह चुके हैं कि पतिके जीवित रहते वा मर जाने पर अन्य पुरुषका नाम भी न लेवे। और दिधिषू नाम पुनर्भू का पापिनी होना भी सिद्ध होचुका है इसलिये ऐसे श्लोक मन्वर्थसे विपरीत होनेके कारण राजा वेनादि के पक्षसाधक एक देशी माने जावें यह भी स-

साधान हो सकता है। इससे विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है॥

आगे गुप्त समाजीने कात्यायन के नाम से निम्न लिखित ढाई श्लोक लिखे हैं—

वरयित्वातुयःकश्चि-त्प्रणश्येत्पुरुषोयदा।
ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्याऽन्यंवरयेद्वरम्॥
वरोयद्यन्यजातीयः पतितःक्लीबएववा।
विकर्मस्थःसगोत्रोवा दासोदीर्घामयोऽपिवा॥
ऊढापिदेयासान्यस्मै सहाभरणभूषिता।

अर्थ-इस पहिले श्लोकमें (वरयित्वा) का स्पष्ट अर्थ यही है कि वरको स्वीकार करके यदि वह वर नष्ट हो जाय वा खो जावे तो तीन ऋतुकाल बीत जाने पर उसका विवाह अन्यवर के साथ कर देना चाहिये। वर का स्वीकार ही वाग्दान वा टीका कहाता है इसी को लोक में वरेखा वा वरेक्षण भी कहते हैं कि वरको देखकर स्वीकार करलेना। वर ईप्सायाम्। धातु चुरादि में है ईप्सा नाम वर को प्राप्त करने की इच्छा का है इससे सप्तपदी पर्यन्त होने वाला कर्म्मकाण्ड रूप विवाह अर्थ यहां कदापि नहीं लिया जा सकता है। तथा द्वितीय श्लोकका अर्थ यह है कि कन्याका वाग्दान रूप विवाह हो जाने पर पता लगे कि वर अन्य जाति का है, पतित है, नपुंसक है, कुकर्मी है, सगोत्री है, दास है वा असाध्य रोगी है ऐसी दशाओं में उस वाग्दत्ता कन्या का अन्यवरके साथ विवाह कर दिया जावे। अर्थात् इनमें से कोई भी कारण न हो तो वाग्दान हो जाने पर अन्यवरके साथ विवाह कदापि नहीं करना चाहिये किन्तु पराशर जी के कथनानुसार ही इन श्लोकों का अभिप्राय वाग्दान होनेपर है। यद्यपि ये ढाई श्लोक वर्त्तमान कात्यायन स्मृतिमें नहीं

दीखते तो भी कदाचित् कहीं हों इस लिये हम ने मन्वादि धर्म शास्त्रोंके सिद्धान्तानुसार शुद्ध निर्दोष अर्थ लिखदिया है। इनसे नियोग वा विधवाका पुनर्विवाह कुछ भी सिद्ध नहीं होता है ॥

वसिष्ठस्मृति अ० १७ के एक श्लोक को भी कोई २ लोग विधवा विवाहके लिये पेश करते हैं—

पाणिग्राहेमृतेवाला केवलंमन्त्रसंस्कृता ।
साचेदक्षतयोनिःस्या-त्पुनःसंस्कारमर्हति॥६६॥

अर्थ—यदि मन्त्रों द्वारा पाणिग्रहण संस्कार तक कृत्य हो गया हो किन्तु सप्तपदी न हुई हो और उस कन्या का किसी पुरुष से संग भी न हुआ हो वा किसी ने बलपूर्वक भी दूषित न की हो तो उसका अन्य वरके साथ विवाह संस्कार हो सकता है। यही अर्थ मनुके भी सर्वथा अनुकूल है क्योंकि मनुजीने अ० ८ में लिखा है कि—

पाणिग्रहणिकामन्त्रा नियतंदारलक्षणम् ।
तेषांनिष्ठातुविज्ञेया विद्वद्भिःसप्तमेपदे ॥

अ०—यह इस का पति हुआ और यह इस की पत्नी हुई ऐसे मन्तव्यका प्रमाण विवाह सम्बन्धी वेद मन्त्र हैं उन मन्त्रों की समाप्ति सातवां पग रखने पर होती है। जैसे नीलाम तीसरी बोली पर खतम हो जाता है एक दो पर लौट भी जाता है वैसे ही कन्यादान पाणिग्रहण और सप्तपदी तीन काम विवाह में मुख्य हैं, दो काम होने तक विवाह लौटा भी जा सकता है परन्तु तीसरा होने पर फिर लौटा नहीं जा सकता । वसिष्ठस्मृति अ० १० में नियोग करने का भी व्याख्यान लिखा है उसका समाधान यही है कि मनुजी के कथनानुसार वही राजा वेन का चलाया नियोग किसी २

अन्यस्मृति में भी लिखा गया है उसका खण्डन भी मनुजीने कर दिया है वही खण्डन सर्वत्र के लिये जानना चाहिये ॥

अब आगे गुप्त समाजी ने (कुहस्विद्दोषा०) इत्यादि तीन वेदमन्त्र लिखे हैं जिनका अर्थ और समाधान विस्तार पूर्वक हम पहिले ही लिखचुके हैं । स्मृतियों के जो २ वचन विधवा विवाह के पक्षपाती लोग देते हैं वे अनेक प्रमाण, स्मृतियोंमें नहीं दीखते जैसे (वरोयद्यन्यजातीयः०) इत्यादि कात्यायनके नाम से लिखा है परन्तु कात्यायनस्मृति में वह श्लोक नहीं है ॥

अब हम लेख का उपसंहार करते हुए अपनी सम्मति लिखते हैं कि यदि हमने स्मृतियों तथा इतिहासादिके जिन प्रमाणों की व्यवस्था जो ऊपर लिखी है उस से भिन्न स्मृति पुराणादिके अन्य प्रमाण कोई दिखावे वा कहीं लिखे छपाये हों तो उन सभी का समाधान भी इसीसे होगया कि यदि स्पष्टरूपसे कहीं नियोग लिखा है तो वही राजा वेन का चलाया नियोग है जिस का खण्डन मनु जी ने कर दिया तो सर्वत्रका नियोग मन्वर्थसे विपरीत होनेके कारण अमान्य सिद्ध होगया और यदि विधवा विवाह का कोई नया प्रमाण दिखावे तो वह भी मनुजी के सिद्धान्त से विरुद्ध होने के कारण एकदेशी माना जायगा ॥

अब रहा यह विचार कि विधवाओं को बड़ा दुःख है और अनेक विधवा गर्भपात करती हैं अनेक नीचादिके संग, भागजाती हैं इत्यादि दुःख और अनर्थों से बचाने के लिये विधवा विवाह के प्रचार की आवश्यकता है । तो इस का, संक्षेपसे समाधान यह है कि सभी प्रकारके धर्मका पालन करने में मनुष्यों को दुःख उठानेकी आवश्यकता है, दुःख सहे विना कोई धर्म नहीं इस से तो यदि विधवाओं को ब्रह्म-

चारिणी रह कर तप करनेका उत्तम शास्त्रानुकूल उपदेश किया जाय तो उनका यह लोक तथा परलोक दोनों सुधर सकते हैं । विधवाविवाह चलाने का प्रचार ब्रह्मचर्य का बाधक और शास्त्रानुकूल होने वाले विधवा धर्म का घातक है । विधवाओंका दुःख तप करने से जैसा मिट सकता और जैसा सुख मिल सकता है वैसा विषय वासना बढ़ाने से कदापि नहीं मिल सकता ॥

रहा छिपकर गर्भपात करने और भाग जाने का विचार सो जब सुना जाता है कि अन्य विलायतों में कुमारी कन्या अनेक गर्भपात करतीं हैं और अनेक सधवा भी भाग जातीं हैं तो ये सब काम व्यभिचार करने से होते हैं । जैसे व्यभिचार का चश्का जिन स्त्री वा पुरुषों को लग जाता है वे अपने पति के वा अपनी पत्नीके विद्यमान होते भी व्यभिचार किये विना नहीं मानते वैसे जिन विधवाओंका विवाह किसी के साथ कर भी दिया जाय तो भी व्यभिचार में जिन का चित्त होगा वे भी व्यभिचारिणी सधवाओं के तुल्य अवश्य कुकर्म करने से नहीं बचेंगीं ॥

हमारी समझ में जिस व्यभिचारके कारण गर्भपात होते और अनेक स्त्रियां अन्य पुरुषों के साथ भाग जातीं हैं इस रोग को दवाइयां दो ही हैं, उनमें एक तो पातिव्रत धर्म का प्रचार उपदेश घर २ में किया जाय, बालिका युवति और वृद्धा सभी स्त्रियों को पतिव्रता धर्म की अनेक रोचक कथा कहानी उपन्यास पढ़ाये तथा सुनाये जाया करें । जितना अधिक पातिव्रत धर्म का उपदेश होगा उतना ही व्यभिचार घटेगा । द्वितीय मन्वादि धर्मशास्त्रानुसार राज दण्ड का भय भी व्यभिचार से बचा सकता है । अब हम इस लेखको यहीं समाप्त करते हैं । यदि इस में और कुछ बढ़ाने की आवश्य-

कता हुई तो अगली आवृत्ति में बढ़ाया जायगा । अन्त में गुणग्राही पाठकों से निवेदन है कि विधवा विवाह का प्रचार विषयासक्तिको बढ़ाने वाला होनेसे अधर्म का साथी है और पातिव्रत धर्म का विशेष प्रचार वा उपदेश फैलाना विषयासक्ति को घटाने वाला होने से धर्म का साथी है। अधर्मसे अधोगति तथा धर्मसे प्राणियोंकी उत्तम गति और सुख होता है इसी अभिप्राय को लेते हुए यह पुस्तक लिखा गया है। यदि इस में कहीं कुछ शास्त्रविरुद्ध लेख हो गया हो वा कहीं कोई भूल जान पड़े तो विचारशील महाशय क्षमा करें ॥

ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति विधवाविवाहमीमांसा समाप्ता ॥

विधवाविवाहमीमांसायाः—

परिशिष्टम् ।

अथर्ववेद के दो मन्त्र (काण्ड ९ अनु० ३ सूक्त ५। २७। २८॥)

पाठकगण ! आगे लिखे दो मन्त्रों से विधवा विवाह के पक्षपाती लोग विधवाविवाह सिद्ध करने की चेष्टा किया करते हैं इस लिये हम इन मन्त्रों का अर्थ यहां छपाये देते हैं कि जब कोई मनुष्य इन मन्त्रों के प्रमाण से विधवाविवाह सिद्ध करने की चेष्टा करे तब निम्नलिखित प्रकार से उत्तर देना चाहिये। प्रथम संस्करण में ये मन्त्र छपाने से रह गये थे इस कारण यहां छपाये हैं ॥

यापूर्वंपतिंवित्वाऽथान्यं विन्दतेऽपरम्
पञ्चौदनंचताव‍जं ददातो न वियोषतः ॥ २७ ॥
समानलोकोभवति पुनर्भुवाऽपरःपतिः ।
योऽजंपञ्चौदनंदक्षिणाज्योतिषंददाति ॥ २८ ॥

अस्मिन्सूक्ते पञ्चौदने नाम्नि सवे हूयमानस्याजस्य जीवतो मृतस्य च प्रशंसा।

इस सूक्त के आरम्भ में विनियोग का विचार लिखनेके अवसर पर यह लिखा है कि इस सूक्त में पञ्चौदन नामक यज्ञ में होम किये जाने वाले जीवित और संज्ञपन को प्राप्त अजनाम बकरे की प्रशंसा की गयी है अर्थात् पञ्चौदनयाग में बलिदान होने वाले बकरे की प्रशंसा रूप अर्थ वाद का वर्णन किया गया जानो उसका विधिवाक्य यह होगा कि पञ्चौदनयाग में बकरे का बलिदान करना चाहिये। अर्थात् याग से भिन्न अवसर में केवल मांस भक्षणादि के प्रयोजन से बकरे का बलिदान कदापि नहीं करना चाहिये। इस प्रकार

अन्यत्र के निषेध में तात्पर्य होने से यह परिसंख्या विधि माना जायगा। जो हिंसा दोष से सर्वथा बचना चाहे वह पञ्चौदनयाग न करके उसके स्थान में अन्य कोई अच्छा पुण्य धर्म करे इससे बकरे के बलिदान का नियम नहीं। काम क्रोध लोभ पूर्वक होने वाली हिंसा की अपेक्षा वेदोक्त हिंसा निर्दोष होने पर भी अन्य हिंसारहित स्वाध्याय जप यज्ञादि की अपेक्षा कुछ दोष युक्त मानी गयी है इस का विचार दार्शनिक आचार्यों ने किया है जिस की व्यवस्था अन्यत्र लिखी जायगी यहां उसका प्रसंग नहीं है॥

मन्त्रार्थः—या स्त्री पूर्वमेकं पतिं वित्त्वा लब्ध्वाऽथेत्यनन्तरमपरं यमन्यं पतिं विन्दते प्राप्नोति तौ द्वावपि स्त्रीपुरुषौ यदि पञ्चौदनमजं ददातः। अर्थात्पञ्चौदनयागं कुरुतस्तदा तौ न वियोषतः परस्परं वियुक्तौ न भवतइदमेव तयोः पञ्चौदनयागस्य फलं भवतीत्यर्थः। अस्यायमभिप्रायः—या स्त्री पूर्वं पतिं स्वयं त्यजति यद्वा तस्याः कटुभाषणादि दोषेण पूर्वः पतिस्तां त्यजति तस्या दोषयुक्तत्वादन्यो द्वितीयोऽपि पतिस्तां त्यजेदथवा सैव पतिं त्यजेदिति सम्भवति। तादृशसंभावितदोषवारणाय ताभ्यां पञ्चौदनयागोऽनुष्ठेयः। द्वितीयमन्त्रेण पञ्चौदनयागेऽनुष्ठितेऽपि द्वि-

तीयपत्युः स्वैरिणीपरिणयदोषो भवत्येवेति दर्शयति–दक्षिणा दक्षिणस्यां दिशि ज्योतिः प्रकाशोपलक्षितं स्वर्गफलं यस्यास्ति तादृशं पञ्चौदनसाध्यमजयागं यः स्वैरिणीपरिणेता ददाति करोति स द्वितीयोऽपरोऽन्यः पतिः पुनर्भुवा स्त्रिया सार्द्धं समानलोको भवति पूर्वपतित्यागरूपपातिव्रतधर्मभ्रंशेन यादृश्यधोगतिः पुनर्भूस्त्रिया भवति तादृश्येवापरस्य पत्युरपि भवतीति मन्त्राशयः ॥

भावार्थः–यापत्यावापरित्यक्ता विधवावा स्वयेच्छया । उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा सपौनर्भव उच्यते ॥ साचेदक्षतयोनिःस्याद् गतप्रत्यागतापिवा । पौनर्भवेनभर्त्रासा पुनःसंस्कारमर्हति ॥ मनु० ॥ ९ ॥

अत्र मनुना पौनर्भवपुत्रलक्षणप्रसंगे पुनर्भूस्त्रियाः पौनर्भवेन भर्त्रा साकं पुनः संस्कारोऽपवादरूपेण दर्शितः । पौनर्भवो न दायाद इति मनुनोक्तं तस्यादायादत्वं मातृदोषकृतमेवावगन्तव्यम् ।

तंशुश्रूषेतजीवन्तं संस्थितंचनलङ्घयेत् ॥
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥

नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौप्रेतेपरस्यतु ॥
आसीतामरणात्क्षान्ता नियताब्रह्मचारिणी ।
योधर्मएकपत्नीनां काङ्क्षन्तीतमनुत्तमम् ॥
व्यभिचारात्तुभर्त्तुःस्त्री लोकेप्राप्नोतिनिन्द्यताम् ।
शृगालयोनिंप्राप्नोति पापरोगैश्चपीड्यते ॥

इत्यादिमनूक्ता रीतिर्वेदानुकूला दिधिषूनामिकथ्या मनूक्तो वेदानुकूलो धर्मस्त्यक्तस्ततो विरुद्धमाचरणं स्वीकृत्यान्यः पतिः स्वीकृतोऽयमेव तस्या दोषः । एवं स्वधर्मात्पतितायाअप्यधिकैर्व्यभिचारवारणायानुग्रहपुरस्सरं पौनर्भवपुरुषेण सार्द्धं पुनःसंस्कारो दर्शितः । सचायमेकपत्नीनां साध्वीनां पातिव्रतधर्मादतिनिकृष्टोऽपि पण्ययोषिद्वद्व्यभिचारापेक्षया श्रेष्ठएवेति धर्मशास्त्रस्य स्फुटोऽभिप्रायः । तस्याश्च दिधिष्वा द्वितीयः पतिरपि नियतपतिव्रतापरिणयापेक्षया पापात्मापि पण्यस्त्रीगामिव्यभिचार्यपेक्षयोत्तमएव तस्मादेव वेदे वियोगवारणाय पञ्चौदनयागानुष्ठानं दर्शितम् । तयोश्चोत्तमकोट्यपेक्षया पापित्वाद् द्वितीयस्य पत्युः पुनर्भूसमानलोकप्राप्तिर्दर्शिता । अन्यत्र सर्वत्रैव स्त्रियाः शुभफलं पतिलोकप्राप्तिरेवो-

क्का परमत्र वेदे समानलोकोभवति पुनर्भुवाऽ-परःपतिरिति वदता स्त्रीलोकप्राप्तिरूपमशुभं फलं पुरुषस्यापि सङ्गदोषात्प्रदर्शितम् । तेन पुनर्भूपरिणयो दूषितइति स्पष्टएव वेदाशयः॥

भावार्थः-(यापूर्वंपतिं०) इस सूक्त में पञ्चौदन नामक यज्ञका वर्णन किया है। जो स्त्री पहिले किसी एक पति के साथ विवाह करले (अथान्यं विन्दतेऽपरम्) तदनन्तर अन्य जिस पुरुष के साथ विवाह करती है (तौ पञ्चौदनमजं ददातः) वे दोनों स्त्री पुरुष यदि पञ्चौदन नामक यज्ञ करते हैं तो (न वियोषतः) उनका परस्पर वियोग नहीं होता यही पञ्चौदनयाग का फल उन दोनों को होता है। इस का तात्पर्य यह है कि जो स्त्री पहिले पति को त्यागती है अथवा उस स्त्री के अप्रियभाषणादि दोष से पहिला पति उसे त्यागता है इसी प्रकार उस स्त्री के मनमें पति के त्याग का दोष होने से वह द्वितीय पति को भी त्यागे वा अप्रिय भाषणादि दोषसे द्वितीय पति भी उसे त्याग दे यह अधिक सम्भव है। लोक में प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि जो स्त्री एक को त्याग कर अन्य पुरुष के पास जाती है फिर वह कई को त्यागती है। इसी प्रकार के संभावित दोष के निवारणार्थ उन दोनों स्त्री पुरुषोंको पञ्चौदनयाग करना चाहिये।

अब द्वितीय मन्त्र से यह दिखाया है कि पञ्चौदनयाग का अनुष्ठान कर लेने परभी द्वितीय पतिको स्वैरिणी परपूर्वा धर्मभ्रष्टा स्त्री के साथ विवाह करने का दोष लगता ही है (दक्षिणा ज्योतिषम्) दक्षिण दिशा वा कृष्ण गति धूमादि मार्ग से प्रकाशोपलक्षित स्वर्गफल जिसका होता ऐसे पञ्चौदन साध्य अज सम्बन्धी यज्ञ को जो स्वैरिणी के

साथ विवाह करने वाला पुरुष दैता नाम करता है वह अ-
पर नाम द्वितीय पति पुनर्भू स्त्रीके साथ समान लोक होता
है अर्थात् पहिले पति के त्याग रूप पातिव्रत धर्म का नाश
करने से जैसी अधोगति पुनर्भू स्त्री की होती है वैसी ही अ-
परपति की भी अधोगति होती है यह मन्त्रका अभिप्राय है॥

भावार्थः-जिसको पहिला पति किसी दोष से त्याग दे
वा मरजावे अथवा स्त्री स्वयं पूर्व पति को त्याग कर अन्य
पुरुष की स्त्री बनकर जिस सन्तान को उत्पन्न करे वह पौन-
र्भव कहाता है। वह पति ने त्यागी वा पति को त्यागने
वाली स्त्री अन्य पुरुष के निकट जाकर लौट आयी हो तो
अक्षतयोनि होने की दशा में पौनर्भव पुरुष के साथ फिर से
विवाहित की जा सकती है। नवम अध्याय में कहे (याप-
त्यावा०) इत्यादि मनु जी ने दो श्लोकों से पौनर्भव पुत्र
का लक्षण दिखाते हुए पुनर्भू स्त्री का पुनः संस्कार अपवाद
रूप से दिखाया है। मनु जी ने यह कहा है कि पौनर्भव
पुत्र दायभागी नहीं है सो उस का दायभागी न होना रूप
दोष माता के दोष से आया जानो। मनु जी ने अ० ५ में
स्त्री का धर्म कहा है कि "जिसके साथ पिता वा भाई ने वि-
वाह कर दिया हो जीवन भर उसी की सेवा करे और मर
जाने पर भी अन्य पति न करे" "पति लोक का सुख चाह-
ती हुई पति का कुछ भी अप्रिय न करे" "पति के मर जाने
पर अन्यपति का नाम भी न लेवे किन्तु मरण पर्यन्त नियत
ब्रह्मचारिणी होकर रहे और पतिव्रता स्त्रियों के सर्वोत्तम
पातिव्रत धर्म के पालन की अभिलाषा मन में रक्खे" स्त्रियों
के लिये कहे इस वेदोक्त धर्म से विरुद्ध चलने वाली पुनर्भू
आदि स्त्री के लिये मनु जी ने कहा है कि "नियत एकपति
से भिन्न के साथ व्यभिचार करने पर अर्थात् एक पति से भिन्न

के साथ नियोगादि करने पर लोक में निन्दा होती, मरने पर शृगालयोनि का प्राप्त होती और कुष्ठादि पाप रोगों से पीडित होती है" इत्यादि मनु जी का कथन वेदानुकूल है और पुनर्भू नामक स्त्री ने मनु जी का कहा धर्म त्यागा, उस मनूक्त पातिव्रत धर्म से विरुद्धाचरण स्वीकार करके अन्य-पति से संबन्ध किया यही उस स्त्री का दोष है। इस प्रकार स्वधर्म से पतित हुई स्त्री का भी अधिक मनुष्यों के साथ व्य- भिचार न होने के लिये अनुग्रह पूर्वक पौनर्भव पुरुष के साथ पुनः संस्कार दिखाया है। सो यह पुनर्भू का संस्कार साध्वी सती स्त्रियों के पातिव्रत धर्म से अतिनिकृष्ट होने पर भी वेश्याओं के तुल्य व्यभिचार की अपेक्षा से अच्छा है यह धर्म शास्त्र का अभिप्राय स्पष्ट है। उस पुनर्भू स्त्री का द्विती- य पति भी नियत पतिव्रता कुमारी के साथ विवाह करने की अपेक्षा से पापी होने पर भी वेश्यागामी व्यभिचारियों की अपेक्षा से अच्छा माना जायगा इसी लिये उन दोनोंका वियोग वारणार्थ पञ्चौदन याग का अनुष्ठान दिखाया है। और वे दोनों स्त्री पुरुष उत्तम कोटि की अपेक्षा से पापी होने सिद्ध हैं इसी से द्वितीय पति को पुनर्भू स्त्री के तुल्य लोक प्राप्त होना दिखाया है। शास्त्र के अन्य प्रसंगों में स- र्वत्र ही स्त्री को पुण्यफल पति लोक का प्राप्त होना ही दि- खाया है। परन्तु यहां (समानलोको०) वेद में पुरुष को भी स्त्री लोक प्राप्ति रूप अशुभ फल सङ्ग दोष से कहा गया है इस से सिद्ध हुआ कि पुनर्भू स्त्री के साथ विवाह करने वाला पुरुष भी पापी होता है इसीसे उसको पुनर्भू के तुल्य अशुभ फल प्राप्त होता है। इस प्रकार अथर्ववेद के उक्त दो मन्त्रों से भी पुनर्विवाह का निन्दित होना सिद्ध है॥

* इति *

* पुस्तकों का सूचीपत्र । *

१—ब्रह्मसर्वस्व मासिक पत्र पिछले भाग प्रतिभागका १।) एकसाथ सब भाग लेने पर १०) . अष्टादशस्मृति हिन्दी भाषाटीका सहित ३) भगवद्गीता भा० टी० २।) याज्ञवल्क्यस्मृति सटीक १।) अष्टाध्यायी पाणिनीय सटीक सोदाहरण २) गणरत्नमहोदधि २) ईशोपनिषद् सभाष्य ≡) केनोपनिषद् सभाष्य ≡) प्रश्नोपनिषद् सभाष्य ॥) उपनिषदों का उपदेश १।) सतीधर्मसंग्रह ।) पतिव्रत माहात्म्य ≡)॥ भर्तृहरिनीतिशतक भा० टी० ≡) भर्तृहरि वैराग्यशतक ≡) भर्तृहरिशृङ्गार शतक ≡) दर्शपौर्णमासपद्धति १) इष्टिसंग्रह ॥) मानवगृह्यसूत्र ॥) आपस्तम्बगृह्यसूत्र ।) यज्ञपरिभाषा सूत्र संग्रह ॥) पञ्चमहायज्ञविधि =) भोजनविधि)॥ सन्ध्योपासनविधि)॥ कात्यायनतर्पणप्रयोग)॥ नित्यहवनविधि)॥ वेदसार शिवस्तोत्र । सनातनधर्मव्याख्यानदर्पण ३।=) दयानन्दमत विद्रावण १) आर्यमत निराकरण प्रश्नावली ।) अश्वमेधिकमन्त्रमीमांसा =) सत्यार्थप्रकाशसमीक्षा =) पञ्चकन्या चरित्र -) विधवाविवाह मीमांसा ।=) मूर्तिपूजा मण्डन =) टनटनबाबू =) दयानन्द की विद्वत्ता)॥ नमस्ते मीमांसा)॥ सनातनधर्म प्रश्नोत्तरावली)॥ प्रेमरत्न -)॥ रत्न -) भजन विनोद)। रम्भाशुकसंवाद सचित्र =) पुराण कर्तृ मीमांसा)॥ जैनास्तिकत्वविचार)॥ दुनियां की रीति)। गीतासंग्रह ।=) योगसार ।) कर्त्तामण्डन)। विधवोद्वाह निषेध ; सुमनवाटिका =) रामगीता =) रामहृदय =) आरोग्यसरी ।) छन्दोवद्ध अंग्रेजी हिन्दी वल्लभकोष ॥) अंग्रेजी हिन्दी तारशिक्षक १) अंग्रेजी हिन्दी व्यापारिक कोष २) हनुमान चालीसा)॥ रामचालीसा)। तार्किकशरीर ।) मूर्तिपूजा ॥) श्राद्ध ।) कान्यकुब्ज प्रकाशिका ≡) यूनान की कहानियां -) शब्दार्थरूपमीमांसा =) धात्वर्थरूपमीमांसा =) अव्ययार्थ मीमांसा -)

पुस्तक मिलनेका पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा